सूक्तिस्तबक.

हिंदी के चोटी के कवियों की चुनी हुई
कविताओं का संग्रह ।

सम्पादक

रघुनन्दन शास्त्री.

एम. ए., एम. ओ. एल.

परिष्कर्ता—

श्री डाक्टर बनारसीदास

एम. ए., पी. एच. डी.

(२०)
(२१)
(२२) सन् १९३१

मूल्य १)

प्रकाशक —

रघुनन्दन शास्त्री एम. ए.

लाहौर ।

पुस्तक मिलने का पता:—

मोतीलाल बनारसीदास,

पंजाब संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर ।

मुद्रक —

दुर्गादास "प्रभाकर"

मुम्बई संस्कृत प्रेस, लाहौर

विषय सूची ।

नोटः—पृष्ठ ३, (कबीर दोहा ७) में, 'घींच' के स्थान में भूल से 'चोंच' छप गया है। कृपया विज्ञ पाठक संशोधन करलें।

इसी प्रकार पृष्ठ २४ (रसखान छन्द ५) में 'बिरहा झलतैं' पाठ अधिक मौलिक है, यद्यपि 'बिरहा नलतैं' अधिक सुगम है। अर्थ दोनों के एक ही हैं। पाठक गण शोध लें।

दो शब्द ।

यूं तो हिन्दी में कविता के सैकड़ों संग्रह-ग्रन्थ विद्यमान हैं, पर ऐसे बहुत कम हैं, जिनमें हिन्दी की सभी मुख्य भाषाओं के, सभी समयों के, और सभी धर्मों के चोटी के कवियों की कविता विद्यमान हो। 'कविता कौमुदी' 'मिश्र-बन्धुविनोद' आदि कई इस प्रकार के सद्ग्रन्थ हैं सही, पर वे बृहत्काय और बहुमूल्य होने के कारण सर्व साधारण और हिन्दी-कविता के प्रारम्भिक विद्यार्थियों के बहुत उपयोगी नहीं। अतः पाठकों को प्रायः सभी तरह के कवियों की बानगी का रसास्वाद कराने के लिये प्रस्तुत संग्रह तय्यार किया गया है।

इसमें हिन्दी की तीनों मुख्य भाषाओं - अवधी, ब्रज और खड़ी बोली का नमूना दिखाया गया है। साथ ही प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार के कवि शिरोमणि रखे गये हैं। कवियों में हिन्दू, मुसलमान, जैनी, बुद्ध आदि सभी धर्मों के कवि चुने गये हैं। स्त्री-कवियों--प्राचीन और अर्वाचीन - का भी समावेश किया गया है। ज्ञान, भक्ति, नीति, सदाचार, प्रकृति वर्णन, देश-भक्ति आदि २ विषयों को ही विशेष रूप से संगृहीत किया है। शृंगारी और क्लिष्ट कवियों को जान बूझ कर छोड़ दिया गया है।

अन्त में एक 'शब्दार्थ कोष' भी जोड़ दिया है, जिसमें कठिन शब्दों के अर्थ, मुहाविरों और कहावतों का स्पष्टीकरण, और पौराणिक प्रसंगों का विशद उल्लेख कर दिया है। साथ

ही प्रत्येक कवि की जीवनी तथा उसकी कविता के सम्बन्ध में साधारण परिचय भी संक्षेप से लिख दिया है।

सारांश यह है कि इस संग्रह को यथाशक्य 'सर्वांगपूर्ण' और अन्य संग्रह ग्रन्थों से अधिक उपयुक्त बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है, जिससे पाठकगण एक छोटी सी अल्पमूल्य लघुपुस्तिका में ही हिन्दी की सभी प्रकार की कविता का नमूना देख सकें। आशा है विज्ञ पाठक अन्य संग्रह ग्रन्थों की अपेक्षा इसमें अवश्य कई विशेषताओं का अनुभव करेंगे।

'पाठ-भेद' के सम्बन्ध में मुझे केवल इतनी ही प्रार्थना करनी है, कि एक इस प्रकार के 'संग्रह-ग्रन्थ' में जो प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिये लिखा गया हो, 'पाठ-भेद' की 'विवेचना' करना और 'फुट नोटों' और भिन्न २ पाठों के उल्लेख की भरमार करना अनुपयुक्त समझा गया है। अतएव उस शैली को छोड़ दिया है। हां, प्राचीन कवियों के सम्बन्ध में मैंने कई प्रकाशित पुस्तकों और यथाप्राप्य हस्तलिपियों के पाठ का मिलान करके देखा है। उस में 'विवेचना' के नियमों के अनुसार जो पाठ बहुत्र पाया गया और जो अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ–भाषा की दृष्टि से, विषय की दृष्टि से और कविता की दृष्टि से, तथा अन्य कई दृष्टि-कोणों से जो पाठ सर्वोत्तम दिखाई दिया है, वही इस पुस्तक में दिया है। इस प्रकार 'पाठ संशोधन' की दृष्टि से भी यह संग्रह अधिक उपयुक्त है।

पाठ विवेचना के कार्य में तथा संग्रह आदि के विषय में और पुस्तक संशोधन में मुझे मेरे पूज्य गुरुवर श्री डाक्टर

बनारसीदास जी एम. ए., पी. एच. डी. ने पर्याप्त सहायता दी है जिसके लिये मैं उनका आजन्म आभारी हूं।

अन्त में, इस पुस्तक में जिन कवि-शिरोमणि महानुभावों की कविताओं का संग्रह किया गया है, मैं उन सब का हृदय से कृतज्ञ हूं। सच तो यह है कि उनकी कविता को परिशीलन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के वे धन्यवाद के पात्र हैं।

शमिति

विनीत —

रघुनन्दन एम. ए.

भूल सुधार और विशेष वक्तव्य

हिन्दी की छपी हुई पुस्तकों में "कबीरा" के स्थान में "काबिरा" या "कबीर" लिखने की परिपाटी है। यह दो प्रकार के पाठ पाये जाने के कारण सन्देह होता है कि महात्मा कबीर ने दो प्रकार के पाठ न दिये होंगे। यह बाद के लोगों का ही आविष्कार है। इसका मूलाधार केवल छन्द की मात्राओं को पूरा रखना ही है। पर यह शैली भाषाविज्ञान और लोक में वस्तुत: प्रचलित उच्चारण के विरुद्ध है। 'कबीर' का सम्बोधन 'कबीरा' होता है, 'काबिरा' नहीं। जैसे 'फकीर' का सम्बोधन 'फकीरा' है 'फकिरा' नहीं। इस के अतिरिक्त मैंने स्वयं कबीर भक्तों की मण्डलियों में जाकर उन के शब्द (गीत) सुने हैं। वे लोग 'कबिरा' उच्चारण नहीं करते। वे सदा 'कबीरा' ही बोलते हैं। इस आधार पर मैंने छपी हुई पुस्तकों के पाठ के विरुद्ध जानबूझ कर 'कबीरा' छापने का साहस किया है। प्रचलित प्रयोग के विरुद्ध छन्द समन्वय के लिये भाषा को भ्रष्ट करना उचित नहीं। महात्मा कबीर स्वाभाविक कवि थे। स्वाभाविक कवि प्राय: छन्द के बन्धनों में नहीं पड़ते। और कबीर तो 'पिङ्गल' न पढ़े थे। हां प्रतिदिन बोली जाने वाली भाषा तो वे खूब जानते होंगे। वे भाषा से अनभिज्ञ नहीं कहे जा सकते। छन्दोविज्ञान में उनकी कोई त्रुटि हो तो क्षन्तव्य हो सकती है। (छन्द के विषय में मेरा वक्तव्य यह है कि "लघुतापि क्वचिद्गुरो:" के नियमानुसार मात्रा पूर्ति की जावे।) अत: मैंने यह उचित समझा है कि कबीर का मौलिक पाठ पुस्तकों से न लेकर कबीर भक्तों के 'उच्चारण' से ग्रहण करूं। इसलिये मैंने 'कबीरा' पाठ दिया है जो भाषाविज्ञान के अनुकूल है और मुझे अधिक मौलिक प्रतीत होता है।

पर प्रचलित परिपाटी के विरुद्ध जाना खतरे से खाली नहीं होता। सम्भव है कई विद्वान् इस से सहमत न हों। अत: मेरा यह निवेदन है

कि जिन्हें 'कबीरा' पाठ से विशेष आपत्ति हो, वे जहां २ (पृष्ठ १ दोहा २-३-४; पृष्ठ २ दोहा १४; पृष्ठ ५ दोहा १० आदि २ अन्यत्र भी) 'कबीरा' लिखा है, उसे कृपया शोधकर 'कबिरा' पढ़ें।

इसी प्रकार पृष्ठ ४ दोहा ६ में "पूजौं" और पृष्ठ ५ दोहा १३ में "पाईहौं" के स्थान भी छन्द समन्वय के लिये क्रमशः 'पुजौं' या "पुजूं" और "पाइहौं" पढ़ें।

पृष्ठ ४ दोहा १ के चतुर्थ पाद के दो पाठ हैं-"तो दुख काहे होय" और "दुख काहे को होय"। अतः विज्ञ पाठक 'को' शब्द को काट कर पाठ ठीक करलें।

शब्दार्थकोष-पृष्ठ १ पंक्ति २ में कबीर की मृत्यु का सम्वत् "१५०५" छपा है। कृपया उसके स्थान में "१५५२ (१४९५ ई०)" शोध कर पढ़ें।

पृष्ठ १ पंक्ति ११ में "८०-९० हज़ार" के स्थान "८-९ लाख" पढ़ें।

पृष्ठ २४ पंक्ति २ में 'बंगाल' के स्थान 'काशी' करलें।

—संग्रहकर्ता

सूक्तिस्तवक ।

कबीर

साधु-स्तुति

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥ १ ॥

कबीरा संगत साधु की, जौ की भूसी खाय ।
खीर खांड भोजन मिलै, साकत संग न जाय ॥ २ ॥

कबीरा संगत साधु की, ज्यों गंधी की बास ।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥ ३ ॥

कबीरा संगत साधु की, निष्फल कभी न होय ।
होसी चन्दन बासना, नीम न कहसी कोय ॥ ४ ॥

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥ ५ ॥

गांठी दाम न बांधई, नहिं नारी से नेह ।
कह कबीर ता साधु के, हम चरनन की खेह ॥ ६ ॥

साधु कहावन कठिन है, ज्यों खांडे की धार।
डगमगाय तो गिरि परै, निश्चल उतरै पार॥ ७॥

साधु कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकना चूर॥ ८॥

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं॥ ९॥

सिंहन के लेंहड़े नहीं, हंसन की नहिं पांत।
लालन की नहिं बोरियां, साधु न चलें जमात॥ १०॥

बन बन तो चंदन नहीं, सूरा का दल नाहिं।
सब समुद्र मोती नहीं, यों साधू जग माहिं॥ ११॥

वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर॥ १२॥

निराकार की आरसी, साधौ ही की देह।
लखा जो चाहै अलख को, इन ही में लखि लेह॥ १३॥

नहिं सीतल है चन्द्रमा, हिम नहिं सीतल होय।
कबीरा शीतल संत जन, नाम सनेही सोय॥ १४॥

साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज-दंत।
एते निकसि न बाहुरैं, जो जुग जांहिं अनन्त॥ १५॥

प्रेम-भक्ति

लगी लगन छूटै नहिं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहां अंगार में, जाहि चकोर चबाय॥ १॥

भक्ति गेंद चौगान की, भावे कोई लै जाय।

कह कबीर कछु भेद नहिं, कहां रंक कहाँ राय ॥ २ ॥

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥ ३ ॥

छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिञर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥ ४ ॥

प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥ ५ ॥

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिन प्रान ॥ ६ ॥

प्रेम तो ऐसा कीजियो, जैसे चंद चकोर।
चोंच टूटि भुइँ मां गिरै, चितवै वाही ओर ॥ ७ ॥

जहां प्रेम तहँ नेम नहिं, तहां न बुधि ब्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिनै तिथि वार ॥ ८ ॥

प्रेम छिपाया न छिपै, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, नैन देत हैं रोय ॥ ९ ॥

पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान ॥ १० ॥

प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय ॥ ११ ॥

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुंई धरै, तब पैठे घर माहिं ॥ १२ ॥

अगिनि आंच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।

नेह निभावन एक रस, महा कठिन व्योहार ॥ १३ ॥

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥ १४ ॥

मिश्रित दोहे

दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे को होय ॥ १ ॥

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख मांहि।
मनुवा तो दहुँ दिस फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥ २ ॥

माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ॥ ३ ॥

जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले, निष्कामी निज देव ॥ ४ ॥

जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़े हरि भजे, भक्त कहावे सोय ॥ ५ ॥

पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजों पहार।
तातें ये चाकी भली, पीस खाय संसार ॥ ६ ॥

कांकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय ॥ ७ ॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढ़ाई अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥ ८ ॥

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥ ९ ॥

कबीरा गर्व न कीजिये, अस जोवन की आस।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ॥ १० ॥

देखि बिरानी चूपड़ी, मन ललचावे जीव।
रूखा सूखा खाय कै, ठंडा पानी पीव ॥ ११ ॥

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुया बेपरवाह।
जिन को कछु न चाहिये, सोई साहंसाह ॥ १२ ॥

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहों कब पाइहों, पूरन परमानन्द ॥ १३ ॥

आये हैं सो जांयगे, राजा रंक फ़क़ीर।
एक सिंघासन चढ़ि चलै, एक बंधे जंजीर ॥ १४ ॥

तू मत जानै बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बंधि रहा, सो अपना नहिं होय ॥ १५ ॥

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं ॥ १६ ॥

साखियां

(१)

ना जाने तेरा साहेब कैसा है !

मसजिद भीतर मुल्ला पुकारै क्या साहेब तेरा बहिरा है।
चिउँटी के पग नेवर बाजै सो भी साहेब सुनता है ॥

पंडित होय के आसन मारै लम्बी माला जपता है।
अन्तर तेरे कपट कतरनी सो भी साहेब लखता है ॥

ऊंचा नीचा महल बनाया गहरी नेव जमाता है।

चलने को मनसूबा नाहीं रहने को मन करता है ॥

कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी जोड़ जमीं में धरता है ।
जेहि लहना है सो लै जैहै पापी वहि वहि मरता है ॥

सतवंती को गजी मिलै नहिं वेश्या पहिरै खासा है ।
जेहि घर साधू भीख न पावै भडुआ खात बतासा है ॥

हीरा पाय परख नहिं जानै कौडी परखन करता है ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरि जैसे को तैसा है ॥ १ ॥

(२)

जो तोहि कर्त्ता वर्ण विचारा । जन्मत तीन दगड अनुसारा ॥
जन्मत शूद्र भये पुनि शूद्रा । कृत्रिम जनेऊ घालि जगदुंद्रा ॥
जो तुम ब्राह्मन ब्राह्मनि जाये । और राह तुम काहे न आये ॥
जो तू तुरुक तुरुकिनी जाया । पेट काहे न सुनति कराया ॥
कारी पीरी दूहो गाई । ताकर दूध देहु बिलगाई ॥
छाड़ कबीर नर अधिक सयानी । कह कबीर भजु सारँगपानी ॥२॥

(३)

दुई जगदीश कहा ते आये कहु कौने भरमाया ।
अल्ला राम करीम केशव हरि हजरत नाम धराया ॥

गहना एक कनक ते गहना तामे भाव न दूजा ।
कहन सुनन को दुई कर व्यापे एक नेवाज एक पूजा ॥

वही महादेव वही मोहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये ।
कोई हिन्दू कोई तुरुक कहावै एक जमीं पर रहिये ॥

वेद किताब पढ़ै वे कुतबा वे मोलना वे पांडे ।
विगत विगत कै नाम धरायो यक माटी के भांडे ॥

कह कबीर वे दोनों भूले रामहिं किनहु न पाया।
वे खसिया वे गाय कटावैं बादे जन्म गवांया॥ ३॥

(४)

अरे इन दोउन राह न पाई।

हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेश्या के पायन तर सोवे यह देखो हिंदुवाई॥

मुसलमान के पीर औलिया मुरगा मुरगी खाई।
खाला केरी बेटी व्याहे घरहि में करै सगाई॥

बाहर से इक मुरदा लाये धोय धाय चढ़वाई।
सब सखियां मिल जेवन बैठीं घर भर करै बड़ाई॥

हिंदुअन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई॥ ४॥

(५)

संतो राह दोऊ हम दीठा।
हिंदू तुरुक हटा नहिं मानै स्वाद सबन को मीठा॥

हिंदू बरत एकादसि साधे दूध सिंघाड़ा सेती।
अन्न को त्यागै मन नहिं हटकै पारन करै सगोती॥

रोजा तुरुक नमाज गुजारैं बिसमिल बांग पुकारैं।
उनकी भिस्त कहां ते होई सांझै मुरगी मारैं॥

हिंदू दया मेहर को तुरकन दोनों घट सो त्यागी।
वै हलाल वै झटका मारैं आगि दुहौं घर लागी॥

हिंदू तुरुक की एक राह है सद्गुरु इहै बताई।

कहइ कबीर सुनो हो संतो राम न कहेउ खोदाई ॥५॥

(६)

साधो भजन भेद है न्यारा ।

कर माला मुद्रा के पहिरे चंदन घसे लिलारा ।
मूंड मुंडाये जटा रखाये अङ्ग लगाये छारा ॥

का पानी पाहन के पूजे कंद मूल फरहारा ।
कहा नेम तीरथ व्रत कीन्हें जो नहीं तत्त विचारा ॥

का गाये का पढ़ि दिखलाये का भरमें संसारा ।
का संध्या तरपन के कीन्हें का षटकर्म अचारा ॥

जैसे वधिक ओट टाटी के हाथ लिये विषचारा ।
ज्यों बक ध्यान धरै घट भीतर अपने अङ्ग विकारा ॥

दै परचै स्वामी होइ बैठै करै विषय व्यवहारा ।
ज्ञान ध्यान को मरम न जानै बाद करै निःकारा ॥

फूके कान कुमति अपनी से बोझ लियो सिर भारा ।
बिन सतगुरु गुरु केतिक बहिगे लोभ लहर की धारा ॥

गहिर गंभीर पार नहिं पावै खंड अखंड से न्यारा ।
दृष्टि अपार चलन को सहजै करै भरम के जारा ॥

निर्मल दृष्टि आतमा जाकी साहेब नाम अधारा ।
कहत कबीर वही जन आवै तैं मैं तजे विकारा ॥ ६ ॥

सूरदास

भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न माने ताप।
सब कुसुमनि मिल रस हरे, कमल बँधावै आप॥ १॥

सुनि परमित पिय प्रेम की, चातक चितवत पारि।
घन आसा सब दुख सहै, अनत न जांचै बारि॥ २॥

देखो करनी कमल की, कीनों जल सों हेत।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहिं समेत॥ ३॥

दीपक पीर न जानई, पावक परत पतंग।
तनु तो तिहि ज्वाला जर्यो, चित्त न भयो रस भंग॥ ४॥

मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूंछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात॥ ५॥

प्रीति परेवा की गनो, चाहत चढ़न अकास।
तहँ चढ़ि तीय जु देखिये, परत छांड़ उर स्वांस॥ ६॥

सुमर सनेह कुरंग को, पवन न राच्यो राग।
धरि न सकत पग पछमनों, सर संमुख उर लाग॥ ७॥

सब रस को रस प्रेम है, विषयी खेलै सार।
तन, मन धन, जोवन खिसै, तऊ न माने हार॥ ८॥

तैं जु रत्न पायो भलो, जान्यो साधु-समाज।
प्रेम कथा अनुदिन सुनी, तऊ न उपजी लाज॥ ९॥

सदा सँघाती आप को, जिय को जीवन प्रान।
सो तू विसर्यो सहज ही, हरि ईश्वर भगवान॥ १०॥

वेद पुराण स्मृति सबै, सुर नर सेवत जाहि।

महामूढ़ अज्ञान मति, क्यों न सँभारत ताहि ॥ ११ ॥
खग मृग मीन पतंग लौं, मैं सोधे सब ठौर ।
जल थल जीव जिते तिते, कहौं कहां लगि और ॥ १२ ॥

प्रभु पूरन पावन सखा, प्राणन हू को नाथ ।
परम दयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ ॥ १३ ॥

गर्भ वास अति त्रास में, जहां न एको अंग ।
सुनि सठ तेरो प्राण पति, तहां न छांड्यो संग ॥ १४ ॥

दिना राति पोखत रह्यो, ज्यों तंबोली पान ।
वा दुख तें तोहि काढ़ि कै, लै दीनो पय पान ॥ १५ ॥

जिन जड़ ते चेतन कियो, रचि गुण तत्व विधान ।
चरन चिकुर कर नख दिये, नयन नासिका कान ॥ १६ ॥

असन वसन बहु विध दिये, औसर औसर आनि ।
मात पिता भैया मिले, नई रुचहि पहिचानि ॥ १७ ॥

सजन कुटुम परिजन बढ़े, सुत दारा धन धाम ।
महामूढ़ विषयी भयो, चित आकर्ष्यो काम ॥ १८ ॥

खान पान परिधान रस, जोवन गयो व्यतीत ।
ज्यों विट परि परतीय वस, भोर भये भय भीत ॥ १९ ॥

जैसे सुख ही मन वढ़्यो, तैसे वढ़्यो अनंग ।
धूम वढ़्यो लोचन खस्यो, सखा न सूझ्यो संग ॥ २० ॥

जम जान्यो सब जग सुन्यो, वाढ़्यो अजस अपार ।
वीच न काहू तव कियो, (जब) दूतनि काढ़्यो वार ॥२१॥

कह जानो कहँवा मुवो, ऐसे कुमति कुमीच ।
हरि सों हेत विसारि के, सुख चाहत है नीच ॥ २२ ॥

जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ "सूर" गँवार ॥ २३ ॥

कवित्त

(१)

मेरो मन अनत कहां सुख पावे।
जैसे उड़ि जहाज़ को पंछी फिरि जहाज़ पर आवे ॥
कमलनयन को छांड़ि महातम और देव को ध्यावे ॥
परम गंग को छांडि पियासो दुर्मति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै ॥
"सूरदास" प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥ १ ॥

(२)

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहिं देखत लरिकन संग तबहिं खिझत बल भैया ॥
मोसों कहत तात वसुदेव को देवकी तेरी मैया ॥
मोल लियो कछु दे वसुदेव को करि करि जतन बटैया ॥
अब बाबा कहि कहत नन्द को जसुमति को कहै मैया ॥
ऐसेहि कहि सब मोहिं खिझावत तब उठि चलो खिसैया ॥
पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया ॥
"सूर" नंद बलिरामहि धिर्यो सुनि मन हरख कन्हैया ॥

(३)

चंन्द्र खिलौना लैहौं मैया मोरी चंद्र खिलौना लैहौं ॥

धौरी को पय पान न करिहौं बेनी सिर न गुथैहौं ॥
मोतिन माल न धरिहौं उर पर झँगुली कंठ न लैहौं ॥
जैहौं लोट अभी धरनी पर तेरी गोद न ऐहौं ॥
लाल कहैहौं नंद बबा को तेरो सुत न कहैहौं ॥
कान लाय कछु कहत जसोदा दाउहिं नाहिं सुनैहौं ॥
चंदा हू ते अति सुन्दर तोहिं नवल दुलहिया ब्यैहौं ॥
तेरी सौंह मेरी सुन मैया अबहीं ब्याहन जैहौं ॥
"सूरदास" सब सखा बराती नूतन मंगल गैहौं ॥

(४)

मैया मोरी, मैं नहिं माखन खायो ।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुवन मोहिं पठायो ॥
चार पहर बंसीवट भटक्यो सांझ परे घर आयो ॥
मैं बालक बहियन को छोटो छींको किस विध पायो ॥
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो ॥
तू जननी मन की अति भोरी इन के कहे पतियायो ॥
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो ॥
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो ॥
"सूरदास" तब बिहँसि जसोदा ले उर कंठ लगायो ॥

मीरां बाई

(१)

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण विन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूं जीवण होय॥ १॥

धान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूं रे, मेरा दरद न जाणै कोय॥ २॥

दिवस तो खाय गमायो रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गमायो झूरतां रे, नैण गमाई रोय॥ ३॥

जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीति किये दुख होय।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीति करो मत कोय॥ ४॥

पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ, ऊभी मारग जोय।
"मीरां" के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम मिलियां सुख होय॥ ५॥

(२)

हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरा दरद न जाणै कोय।

सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय।
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होय॥ १॥

घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहरी की गति जौहरी जानै, की जिन जौहर होय॥ २॥

दरद की मारी बन बन डोलूं, वैद मिल्या नहिं कोय।
"मीरां" की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद सँवलिया होय॥ ३॥

तुलसीदास

बंदौं संत असज्जन चरना।
दुखप्रद उभय बीच कछु वरना॥ १॥

बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।
मिलत एक दारुन दुख देहीं॥ २॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई॥ ३॥

काहु न कोउ दुख सुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥ ४॥

सुमति कुमति सबके उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥ ५॥

जहां सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहां कुमति तहँ विपति निदाना॥ ६॥

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिय भल जानी॥ ७॥

उचित कि अनुचित किये विचारू।
धर्म जाइ सिर पातक भारू॥ ८॥

अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमर पति ऐन॥ ९॥

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहु नाहीं॥ १०॥

राम भजन बिन मिटहिं कि कामा।

थल विहीन तरु कबहुं कि जामा ॥ ११ ॥
बिनु विज्ञान कि समता आवइ।
कोउ अवकास कि नभ बिन पावइ ॥ १२ ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।
बिनु महि गंध कि पावइ कोई ॥ १३ ॥
बिनु तप तेज कि कर बिसतारा।
जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥ १४ ॥
सील कि मिल बिन बुध सेवकाई।
जिमि बिनु तेज न रूप 'गुसांई' ॥ १५ ॥
निज सुख बिन मन होय कि थीरा।
परस कि होइ विहीन समीरा ॥ १६ ॥
कवनिउँ सिद्धि कि बिन बिस्वासा।
बिनु हरि भजन कि भव भय नासा ॥ १७ ॥
बिन बिस्वास भक्ति नहिं, तेहि बिन द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिश्राम ॥ १८ ॥
परद्रोही कि होइ निःसंका।
कामी पुनि कि रहइ निकलंका ॥ १९ ॥
भव कि परहिं परमातम बिंदक।
सुखी कि होंहि कबहुँ पर निंदक ॥ २० ॥
राज कि रहइ नीति बिनु जाने।
अघ कि रहइ हरि चरित बखाने ॥ २१ ॥
पावन जस कि पुन्य बिन होई।
बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ॥ २२ ॥

धन्य सो भूप नीति जो करई।
धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥ २३॥

धन्य घरी सोइ जब सतसंगा।
धन्य जन्म हरि भक्ति अभंगा॥ २४॥

कवि कोविद गावहिं अस नीति।
खल सन कलह नहीं भल प्रीति॥ २५॥

उदासीन नित रहिय 'गुसाईं'।
खल परिहरिय स्वान की नाईं॥ २६॥

फूलइ फलइ न बेत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम॥ २७॥

रहीम

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सुचहिं सुजान ॥ १ ॥

जो रहीम होती कहूं, प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ कोधौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥ २ ॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह सांति।
उदत चन्द्र जिहि भांति से, अथवत वाही भांति ॥ ३ ॥

तब ही लग जीवो भलो, दीवो परै न धीम।
बिन दीवो जीवो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥ ४ ॥

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहां काम आवै सुई, कहा करै तरवारि ॥ ५ ॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अंत बसि, कहा भौंर को भाय ॥ ६ ॥

सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥ ७ ॥

मान सरोवर ही मिलै, हंसनि मुक्ता भोग।
सफरिन भरे रहीम सर, बक बालकन हिं जोग ॥ ८ ॥

रहिमन जाचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हूं को भयो, बावन आँगुर गात ॥ ९ ॥

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकास लौं, तऊ बावनै नाम ॥ १० ॥

माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम।
तीन पैर बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥ ११ ॥

संतत संपति जानि के, सब को सब कुछ देई।
दीनबन्धु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेई ॥ १२ ॥

समय दसा कुल देखि के, लोग करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥ १३ ॥

सर सूखे पंछी उड़ें, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥ १४ ॥

राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुं, होति आपने हाथ ॥ १५ ॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केरु को संग।
वे डोलत रस आपने, उन के फाटत अंग ॥ १६ ॥

जो रहीम ओछो बढै, तौ तितही इतराय।
प्यादे से फरज़ी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥ १७ ॥

रहिमन सूधी चाल सों, प्यादा होत वज़ीर।
फ़रज़ी मीर न हो सकै, टेढ़े की तासीर ॥ १८ ॥

खीरा को मुँह काटि के, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुवे मुखन की, चाहिये यही सजाय ॥ १९ ॥

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात ॥ २० ॥

कमला थिर न रहीम कहिं, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय ॥ २१ ॥

रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करत, भरे बिगारत दीठ॥ २२॥

जे गरीब सों हित करैं, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥ २३॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु।
भली बिचारी दीनता, दीन-बन्धु से बन्धु॥ २४॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीन बन्धु सम होय॥ २५॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥ २६॥

आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन कूर बबूर॥ २७॥

जो बड़ेन को लघु कहौ, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं॥ २८॥

बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि॥ २९॥

रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लिपटाय।
पसु खर खात सवाद सों, गुर गुलिया ये खाय॥ ३०॥

प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय॥ ३१॥

जेहि रहीम तन मन दियो, कियो हिये बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन॥ ३२॥

जो पुरुषारथ ते कहूं, सम्पति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥ ३३ ॥

सब कोऊ सब सों करै, राम जुहार सलाम।
हित रहीम तब जानिये, जा दिन अटकै काम ॥ ३४ ॥

ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होय ॥ ३५ ॥

सम्पति भरम गंवाई के, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत हैं, दिवस अकासहि माहिं ॥ ३६ ॥

अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़न के जोर।
ज्यों ससि के संजोग ते, पचवत आगि चकोर ॥ ३७ ॥

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥ ३८ ॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहिं सब ताहि ॥३९॥

अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गांस।
जैसे मिसरिहु में मिली, निरस बांस की फांस ॥ ४० ॥

गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप तें काढ़ि।
कूपहुँ ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥ ४१ ॥

रहिमन मन महाराज के, दृग सों नहीं दिवान।
जाहि देखि रीझै नयन, मन तेहि हाथ बिकान ॥ ४२ ॥

रहिमन लाख भली करौ, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूं, सांप सहज धरि खाय ॥ ४३ ॥

सीत हरत तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥ ४४ ॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध को, मथे न माखन होय ॥ ४५ ॥

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलै हैं लोग सब, बांटि न लै हैं कोय ॥ ४६ ॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर ॥ ४७ ॥

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ मांगन जाहिं।
उन से पहिले वे मुए, जिन मुख निकसति नाहिं ॥ ४८ ॥

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुस चून ॥ ४९ ॥

खैर खून खांसी खुसी, बैर प्रीति मधु पान।
रहिमन दाबे न दबे, जानत सकल जहान ॥ ५० ॥

अब रहीम मुसकिल परी, गाढे दोऊ काम।
सांचे से तो जन नहीं, झूठे मिलै न राम ॥ ५१ ॥

रहिमन विपदा तू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥ ५२ ॥

छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥ ५३ ॥

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान बिन।
जो विष देय बुलाय, प्रेम सहित मरिबो भलो ॥ ५४ ॥

धूर धरत नित सीस पर, कहु रहीम केहि काज।
जिहिं रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढत गजराज॥ ५५॥

ओछे काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होइ।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरधर कहै न कोइ॥ ५६॥

कुटिलनि संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैननि करैं, उरज उमेठे जाहिं॥ ५७॥

तैं रहीम चित आपनो, कीन्हौं चतुर चकोर।
निसि वासर लागो रहै, कृष्ण चन्द्र की ओर॥ ५८॥

———

रसखान

[१]

मानस हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गांवके ग्वारन।
जौ पसु हौं तौ कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो, धर्‍यो करछत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं, वहि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥

[२]

ब्रह्म में ढूंढ्यो पुरानन गानन, वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहुं न कितूं वह, कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पर्‍यौ, रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुर्‍यौ वह कुंज कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका पायन॥२॥

[३]

सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावे।
जाहि अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सुवेद बतावे॥
नारद से सुक व्यास रटे, पचिहारे तऊ पुनि पार न पावे।
ताहि अहीर की छोहरियां, छछियां भरि छाछ पे नाच नचावें॥३॥

[४]

द्रौपदि औ गनिका गजगीध, अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम गेहिनी कैसि तरी, प्रहलादको कैसे हर्‍यो दुःखभारो॥
काहे को सोच करै रसखानि, कहा करि हैं रविनंद विचारो।
कौन कि संक परी है जु माखन, चाखनहारो सो राखनहारो॥४॥

[५]

ब्रह की जब आंच लगी तन में, तब जाय परी जमुना जल में।
बिरहानलतें जल सूक गयो, मछली विह छांड गई तर में॥
जब रेत फटी रु पताल गई, तब सेस जर्‌यो धरती तर में।
रसखान कहे एहि आंच मिटे, जब आय के स्याम लगे गर में॥५॥

दोहे

मोहन छबि रसखान लखि, अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं॥ १॥

दम्पति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इन तें परे बखानिये, सुद्ध प्रेम रसखान॥ २॥

अति सूछम कोमल अति हिं, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित इक रस भरपूर॥ ३॥

शास्त्रन पढ़ पंडित भये, कै मौलवी कुरान।
जुपै प्रेम जान्यो नहिं, कहा कियो रसखान॥ ४॥

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो पै जानहि प्रेम तो, जग क्यों मरता रोय॥ ५॥

कविवर वृन्द

जाही ते कछु पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास ॥ १ ॥

दीबो अवसर को भलो, जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम ॥ २ ॥

अपनी पहुंच विचारि कै, करतब करिये दौर।
तेते पांव पसारिये, जेती लांबी सौर ॥ ३ ॥

पिसुन-छल्यो नर सुजन सों, करत विसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवत छाँछहि फूँकि ॥ ४ ॥

विद्याधन उद्यम विना, कहौ जु पावै कौन।
विना डुलाये न मिले, ज्यों पंखा की पौन ॥ ५ ॥

ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल, घटत घटत घट जाय ॥ ६ ॥

बुरे लगत सिख के बचन, हिये विचारो आप।
करुवी भेषज विन पिये, मिटै न तन की ताप ॥ ७ ॥

गुरुता लघुता पुरुष की, आश्रय बस तें होय।
करी वृन्द में विंध्य सों, दर्पन में लघु सोय ॥ ८ ॥

रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।
सब ही जानत बढ़त है, वृक्ष बराबर बेल ॥ ९ ॥

फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै ब्योपार।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥ १० ॥

करिये सुख को होत दुख, यह कहो कौन सयान।
वा सोने को जारिये, जासों टूटे कान ॥ ११ ॥

नयना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत ॥ १२ ॥

अति परचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलया गिरि की भीलनी, चंदन देत जराय ॥ १३ ॥

निष्फल श्रोता मूढ़ पै, कविता वचन विलास।
हाव भाव ज्यों तीय के, पति अंधे के पास ॥ १४ ॥

हितहू की कहिये न तिहिं, जो नर होय अबोध।
ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाये क्रोध ॥ १५ ॥

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय ॥ १६ ॥

रोस मिटे कैसे कहत, रिस उपजावन बात।
ईंधन डारे आग मों, कैसे आग बुझात ॥ १७ ॥

जो जेहि भावे सो भलौ, गुन को कछु न विचार।
तज गजमुकता भीलनी, पहिरति गुंजा हार ॥ १८ ॥

दुष्ट न छाँढ़ै दुष्टता, कैसे हूँ सुख देत।
धोये हूँ सौ बेर के, काजर होत न सेत ॥ १९ ॥

जो चेतन ते क्यों तजें, जाको जासों मोह।
चुंबक के पीछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह ॥ २० ॥

जो पावै अति उच्च पद, ताकौ पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लौं, अस्त होतु है भान ॥ २१ ॥

जिहि प्रसंग दूषन लगे, तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥ २२ ॥

जाके सँग दूषण दुरै, करिये तिहि पहिचानि।
जैसे समझै दूध सब, सुरा अहीरी पानि ॥ २३ ॥

मूरख गुन समझै नहीं, तौ न गुनी में चूक।
कहा घट्यो दिन को विभौ, देखै जौ न उलूक ॥ २४ ॥

करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक को, आम कहां ते होइ ॥ २५ ॥

बहुत निबल मिल बल करैं, करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी, करी निबन्धन होय ॥ २६ ॥

साँच झूँठ निर्णय करै, नीति निपुन जो होय।
राजहंस बिन को करै, छीर नीर को दोय ॥ २७ ॥

दोषहिं को उमहै गहै, गुन न गहै खल लोक।
पियै रुधिर पय ना पियै, लागि पयोधर जोंक ॥ २८ ॥

कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै, केतक सींचो नीर ॥ २९ ॥

क्यों कीजे ऐसो जतन, जाते काज न होय।
परबत पर खोदै कुँआ, कैसे निकसै तोय ॥ ३० ॥

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर होत निसान ॥ ३१ ॥

कुल सपूत जान्यौ परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥ ३२ ॥

अपनी प्रभुता को रुचै, बोलत झूँठ बनाय।
वेश्या बरस घटावहीं, जोगी बरस बढ़ाय॥ ३३॥

कछु कहि नीच न छेड़िये, भलो न वाको संग।
पाथर डारे कीच में, उछरि बिगारे अंग॥ ३४॥

सब सों आगे होय कै, कबहुँ न करिये बात।
सुधरे काज समान फल, बिगरे गारी खात॥ ३५॥

छमा खड्ग लीने रहै, खल को कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल, आपहि ते बुझि जाय॥ ३६॥

ओछे नर के पेट में, रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात॥ ३७॥

जूवा खेले होतु है, सुख सम्पति को नास।
राज काज नल ते छुट्यो, पाँडव किय बनवास॥ ३८॥

सरसुति के भँडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों त्यों बढ़ै, बिन खरचै घट जात॥ ३९॥

लोकन के अपवाद को, उर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरि, सुनत रजक के बैन॥ ४०॥

वह सम्पति केहि काम की, जनि काहू पै होय।
नित्य कमावै कष्ट करि, बिलसै औरहि कोय॥ ४१॥

पंडित जन को श्रम मरम, जानत जे मतिधीर।
कबहूँ बांझ न जानिई, तन प्रसूत की पीर॥ ४२॥

जो पहिले कीजे जतन, सो पीछे फलदाय।
आग लगे खोदे कुँवा, कैसे आग बुझाय॥ ४३॥

सुनत श्रवन पिय के वचन, हिय निकसै हित पागि।
ज्यों कदम्ब बरषा समै, फूलत बूंदनि लागि ॥ ४४ ॥

ज्यों ज्यों छुटै आयानपन, त्यों त्यों प्रेम प्रकास।
जैसे कैरी आंब की, पकरत पकै मिठास ॥ ४५ ॥
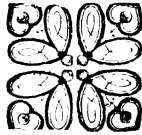
बैताल

(१)

जीभि जोग अरु भोग, जीभि बहु रोग बढ़ावै।
जीभि करै उद्योग, जीभि लै कैद करावै॥
जीभि स्वर्ग लै जाय, जीभि सब नरक दिखावै।
जीभि मिलावै राम, जीभि सब देह धरावै॥
निज जीभि ओठ एकाग्र, करि बाँट सहारे तोलिये।
बैताल कहै विक्रम सुनो, जीभि सँभारे बोलिये॥ १॥

(२)

टका करै कुतहूल टका मिरदङ्ग बजावै।
टका चढ़ै सुखपाल टका सिर छत्र धरावै॥
टका माय अरु बाप टका भैयन को भैया।
टका सास अरु ससुर टका सिर लाड़ लड़ैया॥
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाये रात दिन।
बैताल कहै विक्रम सुनो धिक जीवन एक टके बिन॥ २॥

(३)

मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू॥
बांभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जु कुल में दाग लगावै॥
अरु बे नियाव राजा मरै तबै नींद भरि सोइये।
बैताल कहै विक्रम सुनो एते मरे न रोइये॥ ३॥

(४)

मर्द सीस परनवै मर्द बोली पहिचानै।
मर्द खिलावै खाय मर्द चिन्ता नहिं मानै॥
मर्द देय औ लेय मर्द को मर्द बचावै।
गाढ़े सँकरे काम मर्द के मर्द आवै॥
पुनि मर्द उनहिं को जानिये दुख सुख साथी दर्द के।
वैताल कहै विक्रम सुनो लच्छन हैं ये मर्द के॥ ४॥

(५)

बुधि विन करे बेपार, दृष्टि बिन नाव चलावे।
सुर विन गावे गीत, अर्थ विन नाच नचावे॥
गुन विन जाय विदेस, अकल विन चतुर कहावे।
बल विन बांधे जुद्ध, हौंस विन हेत जनावे॥
अनइच्छा इच्छा करे, अनदीठी वातां कहे।
वैताल कहे विक्रम सुनो, यह मूरख की जात है॥ ५॥
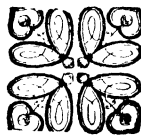
गिरिधर कविराय

(१)

साँई ऐसे पुत्र से, बांझ रहे वरु नारि।
बिगरी बेटे बाप से, जाय रहे ससुरारि॥
जाय रहे ससुरारि, नारि के नाम बिकाने।
कुल के धर्म नसायँ, और परिवार नसाने॥
कह गिरिधर कविराय, मातु झंखै वहि ठाँई।
असि पुत्रनि नहिं होय, बांझ रहतिउँ वरु साँई॥ १ ॥

(२)

साँई बैर न कीजिये, गुरु पंडित कवि यार।
बेटा बनिता पांवरिया, यज्ञ करावन हार॥
यज्ञ करावन हार, राज मन्त्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य, आप को तपै रसोई॥
कह गिरिधर कविराय, जुगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह, दिये बनि आवै साँई॥ २ ॥

(३)

सोना लादन पिय गये, सूना करि गये देस।
सोना मिले न पिय मिले, रूपा ह्वै गये केस॥
रूपा ह्वै गये केस, रोय रंग रूप गंवावा।
सेजन को बिसराम, पिया बिन कबहुँ न पावा॥
कह गिरिधर कविराय, लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव, कहा करि हौं लै सोना॥ ३ ॥

(४)

दौलत पाय न कीजिये, सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को, ठाउं न रहत निदान॥
ठाउं न रहत निदान, जियत जग में जस लीजै।
मीठे वचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै॥
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निसि दिन चारि, रहत सब ही के दौलत॥ ४॥

(५)

सांई सब संसार में, मतलब का ब्योहार।
जब लग पैसा गांठ में, तब लग ताको यार॥
तब लग ताको यार, यार सँग ही सँग डोलें।
पैसा रहा न पास, यार मुख से नहिं बोलें।
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोइ साँईं॥ ५॥

(६)

सांई अवसर के पड़े, को न सहै दुख द्वन्द।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द।
वै राजा हरिचन्द, करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी वेष, फिरै अर्जुन बलधारी॥
कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोई।
को न करै घटि काम, परे अवसर के साँईं॥ ६॥

(७)

लाठी में गुण बहुत हैं, सदा राखिये संग।
गहिर नदी नारा जहां, तहां बचावै अंग॥
तहां बचावै अंग, झपटि कुत्ता कहँ मारे।
दुस्मन दावागीर होंय, तिनहूँ को झारै॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो धूर के बाठी।
सब हथियारन छांड़ि, हाथ महँ लीजै लाठी॥ ७॥

(८)

कमरी थोरे दाम की, आवै बहुतै काम।
खासा मलमल वाफता, उन कर राखै मान॥
उन कर राखै मान, बुन्द जहँ आड़े आवै।
बकुचा बांधे मोट, रात को झारि बिछावै॥
कह गिरिधर कविराय, मिलत है थोरे दमरी।
सब दिन राखै साथ, बड़ी मर्यादा कमरी॥ ८॥

(९)

बिना बिचारे जो करै, सो पीछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हँसाय॥
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावै।
खान पान सन्मान, राग रंग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माँहिं, कियो जो बिना बिचारे॥ ९॥

(१०)

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, ताहि में चित्त देइ॥
ताहि में चित्त देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हंसै न कोइ, चित्त में खता न पावै॥
कह गिरिधर कविराय, यहै करु मन परतीती।
आगे को सुख समुझि, होइ बीती सो बीती॥ १०॥
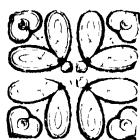
बुद्धभगवान् का
परिनिर्वाण।

नाना देशन माहिं आपनो 'संघ' बनावत।
घूमि घूमि भगवान् रहे निज वचन सुनावत ॥१॥

कबहुँ राजगृह और कबहुँ वैशाली जाई।
कौशांबी औ श्रावस्ती में कछु दिन छाई ॥२॥

'चातुर्मास्य' विताय विविध उपदेश सुनावत।
भूल भटकन को सुंदर मारग पै लावत ॥३॥

अधिक काल पै श्रावस्ती हि माहिं वितायो।
जहाँ 'जेतवन' बीच धर्म बहु कहि समझायो ॥४॥

पैंतालिस चौमासन लौं या धराधाम पर।
प्रभु समझावत रहे धर्म के तत्व निरंतर ॥५॥

जगी ज्योति जिनकी जग में ऐसी उजियारी।
सब देशन को सूझि पर्‌यो पथ मंगलकारी ॥६॥

ध्यावत जाको जग के आधे नर हिय धारे।
आलोकित हैं जा की आभा सों मत सारे ॥७॥

अंत काल नियराय गयो जब एक दिवस तब।
'पावा' में प्रभु जाय पधारे शिष्यन लै सब ॥८॥

'चंद' नाम के कर्मकार के भवन कृपा करि।
पायो भोजन दियो सामने जो वा ने धरि ॥९॥

कुशीनार को गये तहां सों है पीड़ित जब।
द्वै साखुन के बीच डारि शय्या पौढ़े तब ॥१०॥

परम शांति सों बोलि देत उत्तर जो मांगत।
 'परिनिर्वाण' पुनीत लह्यो भगवान् तथागत ॥११॥

मनुजन में रहि मनुज सरिस शुभ मार्ग दिखाई।
 परम शून्यमय नित्य शांति में गये समाई ॥१२॥

('बुद्धचरित' से उद्धृत)

फुटकर ।

(१)

भोजन ज्यों घृत बिन, पन्थ जैसे साथी बिन,
हाथी बिन दल जैसे, दास बिन बान है ।
राव रङ्क रानी बिन, कूप जैसे पानी बिन,
कवि जैसे बानी बिन, राग बिन तान है ॥
रस रास रीति बिन, मित्र ज्यों प्रतीति बिन,
व्याह काज गीत बिन, मान बिन दान है ।
रंग जैसे केसर बिन, मुख जैसे बेसर बिन,
प्यारी बिन रैन ज्यों, सुपारी बिन पान है ॥

(२)

गुन बिन कमान जैसे, गुरु बिन ज्ञान जैसे,
मान बिन दान जैसे, जल बिन सर है ।
कण्ठ बिन गीत जैसे, हेत बिन प्रीत जैसे,
वेश्या बिन रीत जैसे, फल बिन तर है ॥
तार बिन यंत्र जैसे, स्याने बिन मंत्र जैसे,
नर बिन नारि जैसे, पुत्र बिन घर है ।
बानी बिन कवि जैसे, मन में बिचारि देखो,
धर्म बिन धन जैसे, पच्छी बिन पर है ॥

(३)

जानै राग रागिनी, कवित्त रस दोहा छंद,
जप तप तेग त्याग, एक सी गतन का ।

"महबूब" उरझि न, देखि सके मित्रन की,
चित्त हर भाँति मैं रिझैया नुकतन का॥
जासे जो कबूलैं, सो न भूलैं, भूलैं
माफ करै साफ दिल, आकिल लिखैया हरफन का।
नेकी से न न्यारा रहै, बदी से किनारा गहै,
ऐसा मिलै प्यारा तो, गुजारा चलै मन का॥

(४)

ज्ञान घटै ठग चोर की संगति, मान घटै पर गेह के जाये।
पाप घटै कछु पुन्य किये, अरु रोग घटै कछु औषध खाये॥
प्रीति घटै कछु मांगन तें, अरु नीर घटै रितु ग्रीषम आये।
नारि प्रसंग तें जोर घटै, जम-त्रास घटै हरि के गुन गाये॥

(५)

(पेट-प्रपंच)

पाजी पेट काज कोटवाल के आधीन होइ,
कोटवाल सो तो सिकदार आगे दीन है,
सिकदार दिवान के पीछे लग्यो डोलै पुनि,
दिवानहु जाय बादशाह आगे लीन है,
बादशाह कहै या खोदाय मुझे और देइ,
पेट ही पसारे वही पेट वस कीन है,
'सुंदर' कहत प्रभु क्युं ही नहिं भरै पेट,
एक पेट काज एक एक के अधीन है॥१"

पेट सो न बली जाके आगे सब हारि चले,
राव अरु रंक एक पेट जीति लिये हैं,
कोउ बाघ मारत विदारत है कुंजरकुं,
ऐसे सूर वीर पेटकाज प्रान दिये हैं,
यंत्र मंत्र साधत आराधत मसान जाइ,
पेट आगे डरत निडर ऐसे हिये हैं,
देवता असुर भूत प्रेत तिनुं लोक पुनि,
'सुंदर' कहत प्रभु पेट जेर किये हैं ॥ २ ॥

प्रात ही उठत जब पेट ही की चिंता तब,
सब कोउ जात आपु आपु के अहार कूं,
कोउ अन्न खात पुनि आमिष भखत कोउ,
कोउ घास चरत चरत कोउ दारकूं,
कोउ मोती फल कोउ वास रस पय पान,
कोउ पौन पीवत भरत पेट भारकूं,
'सुंदर' कहत प्रभु पेट ही भ्रमाये सब,
पेट तुम दियो है जगत होन ख्वारकूं ॥३॥

पेट ही के वस रंक पेट ही के वस राव,
पेट ही के वस और खान सुलतान है,
पेट ही के वस जोगी जंगम सन्यासी सेख,
पेट ही के बस वन वासी खात पान है,
पेट ही के बस ऋषि मुनि तप धारी सब,
पेट ही के वस सिद्ध साधक सुजान है,

'सुंदर' कहत नहि काहू को गुमान रहे,
पेट ही के बस प्रभु सकल जहान है ॥४॥

(कविवर सुन्दर)

(६)

सिंहन के वन में बसियै, जल में घुसिये कर में बिछु लीजै ।
कानखजूरकुं कान में डार के, सांपन के मुख आंगुरि दीजै ॥
भूत पिसाचन में बसियै अरु, झेरिकुं घोल हलाहल पीजै ।
जा जग चाहे जियो 'रघुनंदन', मूरख मित्र कबू नहिं कीजै ॥१॥

(कविवर रघुनन्दन)
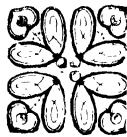
श्रीधर पाठक।

वन-शोभा।

चारु हिमाचल आँचल में,
एक साल विसालन कौ बन है।
मृदु मर्मर शील झरैं जल-स्रोत हैं,
पर्वत-ओट है निर्जन है॥
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन
प्रवीन विहंगन कौ गन है।
भटक्यौ तहाँ रावरौ भूल्यौ फिरै,
मद बावरौ सौ अलि को मन है॥१॥

भारत में वन! पावन तूही,
तपस्वियों का तप-आश्रम था।
जग-तत्व की खोज में लग्न जहां,
ऋषियों ने अभग्न किया श्रम था॥
जब प्राकृत-विश्व का विभ्रम और था,
सात्विक जीवन का क्रम था।
महिमा बन-वास की थी तब
और प्रभाव पवित्र अनूपम था॥२॥

———

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ।

कर्म-वीर ।

(१)

देख कर जो विघ्न-बाधाओं को घबराते नहीं ।
भाग पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं ॥
काम कितना ही कठिन हो पर जो उकताते नहीं ।
भीड़ पड़ने पर भी जो चंचल हैं दिखलाते नहीं ॥
होते हैं यक आन में उन के बुरे दिन भी भले ।
सब जगह सब काल में रहते हैं वे फूले फले ॥१॥

(२)

आज जो करना है कर देते हैं उस को आज ही ।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही ॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही ।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आप ही ॥
भूल कर वे दूसरे का मुँह कभी तकते नहीं ।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ॥२॥

(३)

जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं ।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं ।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥

बात है वह कौन जो होती नहीं उन के लिये।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ॥३॥

(४)

गगन को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठों पहर ॥

गर्जते जल-राशि की उठती हुई ऊँची लहर।
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लवर ॥

ये कँपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं।
भूल कर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥४॥

(५)

चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना ॥

हँसते हँसते जो चबा लेते हैं लोहे का चना।
"है कठिन कुछ भी नहीं" जिन के है जी में यह ठना॥

कोस कितने हूँ चलें पर वे कभी थकते नहीं।
कौनसी है गाँठ जिस को खोल वे सकते नहीं ॥५॥

(६)

ठीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली।
रेग को भी कर दिखा देते हैं वे सुन्दर गली ॥

वे बबूलों में लगा देते हैं चंपे की कली।
काक को भी वे सिखा देते हैं कोकिल-काकली ॥

ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वे कमल।
वे लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल फल ॥६॥

(७)

काम को आरंभ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना कर के नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहिं तोड़ते।
संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन।
काँच को कर के दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन॥७॥

(८)

पर्वतों को काट कर सड़कें बना देते हैं वे।
सैकड़ों मरुभूमि में नदियां बहा देते हैं वे॥
अगम जलनिधि-गर्भ में बेड़ा चला देते हैं वे।
जंगलों में भी महा मंगल रचा देते हैं वे॥
भेद नभ-तल का उन्हों ने है बहुत बतला दिया।
है उन्हों ने ही निकाली तार की सारी क्रिया॥८॥

(९)

कार्य-थल को वे कभी नहिं पूछते "वह है कहाँ"।
कर दिखाते हैं असम्भव को वही सम्भव यहां॥
उलझनें आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहां।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहां॥
डाल देते हैं विरोधी सैंकड़ों ही अड़चनें।
वे जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें॥९॥

(१०)

जो रुकावट डाल कर होवे कोई पर्वत खड़ा ।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वे उड़ा ॥
बीच में पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा ।
तो बना देंगे उसे वे क्षुद्र पानी का घड़ा ॥
वन खँगालेंगे करेंगे व्योम में बाजीगरी ।
कुछ अजब धुन काम के करने की उन में है भरी ॥१०॥

(११)

सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले ।
बुद्धि विद्या, धन विभव के हैं जहां डेरे डले ॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले ।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले ॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी ।
देश की औ जाति की होगी भलाई भी तभी ॥११॥

एक तिनका ।

(१)

मैं घमंडों में भरा ऐंठा हुआ ।
एक दिन जब था मुँडेरे पर खड़ा ॥
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ ।
एक तिनका आँख में मेरी पड़ा ॥ १ ॥

(२)

मैं झिझक उट्ठा, हुआ बेचैन सा।
लाल हो कर आंख भी दुखने लगी॥
मूंठ देने लोग कपड़े की लगे।
ऐंठ बेचारी दबे पावों भगी॥ २॥

(३)

जब किसी ढब से निकल तिनका गया।
तब "समझ" ने यों मुझे ताने दिये॥
ऐंठता तू किस लिये इतना रहा।
एक तिनका है बहुत तेरे लिये॥ ३॥

फूल और काँटा।

(१)

हैं जनम लेते जगह में एक ही।
एक ही पौधा उन्हें है पालता॥
रात में उन पर चमकता चाँद भी।
एक ही सी चांदनी है डालता॥ १॥

(२)

मेंह उन पर है बरसता एक सा।
एक सी उन पर हवायें हैं बहीं॥
पर सदा ही यह दिखाता है हमें।
ढंग उन के एक से होते नहीं॥ २॥

(३)

छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ ।
फाड़ देता है किसी का वर वसन ॥
प्यार-डूबीं तितलियों का पर कतर ।
भौंर का है वेध देता श्याम तन ॥ ३ ॥

(४)

फूल ले कर तितलियों को गोद में ।
भौंर को अपना अनूठा रस पिला ॥
निज सुगंधों औ निराले रंग से ।
है सदा देता कली जी की खिला ॥ ४ ॥

(५)

है खटकता एक सब की आंख में ।
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर ॥
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे ।
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ॥ ५ ॥

———

एक बूँद ।

(१)

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से ।
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी ॥
सोचने फिर फिर यही जी में लगी ।
आह क्यों घर छोड़ कर मैं यों कढ़ी ॥ १ ॥

(२)

देव मेरे भाग में क्या है बदा।
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में॥
या जलूँगी गिर अँगारे पर किसी।
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में॥ २॥

(३)

बह गई उस काल एक ऐसी हवा।
वह समुन्दर ओर आई अनमनी॥
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला।
वह उसी में जा पड़ी मोती बनी॥ ३॥

(४)

लोग यों ही हैं झिझकते सोचते।
जब कि उन को छोड़ना पड़ता है घर॥
किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें।
बूँद लौं कुछ और ही देता है कर॥ ४॥

———

सैयद अमीर अली 'मीर'।

दशहरा।

आ गया प्यारा दशहरा, छा गया उत्साह बल।
मातृ-पूजा, शक्ति पूजा, वीर-पूजा, है विमल ॥१॥

हिन्द में यह हिन्दुओं का विजय-उत्सव है ललाम।
शरद की इस सुऋतु में है खड्ग पूजा धाम धाम ॥२॥

दिखने लगे खञ्जन यहां, रहने लगे चकवा अशोक।
अब चल पड़े योगी यती मग की मिटी सब रोक टोक ॥३॥

भरने लगे बाज़ार हैं, खुलने लगे व्यापार द्वार।
सजने लगे सेना नृपति, बजने लगे बाजे अपार ॥४॥

यह दशहरा क्षत्रियों का प्राण जीवन पर्व है।
हिन्द के इतिहास में इस पर्व का अति गर्व है ॥५॥

वीर पुरुषों को यही संजीवनी का काम दे।
जीत दे फिर कीर्ति दे फिर मान दे धन धाम दे ॥६॥

थी विजय-दशमी यही, जब राम ने दल साज कर।
गिरि प्रवर्षण से चढ़ाई की थी लंका राज पर ॥७॥

मार रावण को वहां, उद्धार सीता का किया।
और लंका का विभीषण को तिलक था देदिया ॥८॥

उस समय से इस दशहरे का बड़ा सम्मान है।
यान गुण का यह प्रवर्तक, क्षत्रियों का प्राण है ॥९॥

आज करते हैं विजय की कामना सब वीर वर।
जाँचते हैं दृष्टि कर गज, अश्व दल हथियार पर ॥१०॥

श्रेय विजया से भरे इतिहास के बहुपत्र हैं।
आज भी प्रतिबिम्ब उसका देखते हम अत्र हैं ॥११॥

जो सबक लेना हमें उससे उचित लेते नहीं।
स्वार्थ-पशु-बलि, त्याग की तलवार से देते नहीं ॥१२॥

इन्द्रियों की वासना ही है असुर, शङ्का नहीं।
ज्ञान-शर से जीतते हैं लोभ की लङ्का नहीं ॥१३॥

हन्त जो कुविचार--रावण है, उसे तजते नहीं।
क्या कहें सुविचार श्रीवर राम को भजते नहीं ॥१४॥

नाश कर "कुविचार" का, 'सद्बुद्धि--सीता' लाइये।
नृप विभीषण की तरह, सन्तोष को अपनाइये ॥१५॥

शान्त हो प्यारी अवध, फिर राज्य उस का कीजिये।
'मीर' विजया की विजय का, इस तरह यश लीजिये ॥१६॥

———

श्री गौरीदत्त बाजपेयी ।

स्वदेश-प्रीति ।

(१)

होगा नहीं कहीं भी ऐसा अतिदुरात्मा वह प्राणी ।
अपनी प्यारी मातृभूमि है जिसमें नहीं गई जानी ॥
"मेरी जननी यही भूमि है"- इस विचार से जिसका मन ।
नहीं उमङ्गित हुआ, वृथा है उस का पृथ्वी पर जीवन ॥१॥

(२)

क्या कोई ऐसा है जिसका मन न हर्ष में भर जाता ।
देश विदेश घूम कर जिस दिन वह अपने घर को आता ॥
यदि कोई है ऐसा, तो तुम जांचो उसको भले प्रकार ।
नाम न लेता होगा कोई करता नहिं होगा सत्कार ॥२॥

(३)

पावे वह उपाधि यदि उत्तम अथवा लक्ष्मी का भंडार ।
लम्बा चौड़ा नाम कमा कर चाहे हो जावे मतवार ॥
उस की सब पदवियाँ व्यर्थ हैं उस के धन को है धिक्कार ।
केवल अपने तन की सेवा करता है जो विविध प्रकार ॥३॥

(४)

विमल कीर्ति का जीवन भर वह कभी न होगा अधिकारी ।
घोर मृत्यु के पञ्जे में फंस पावेगा वह दुख भारी ॥
तुच्छ धूल से उपजा था वह उस में ही मिल जावेगा ।
उस पापी के लिये न कोई आँसू एक बहावेगा ॥ ४ ॥

श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।

(१)

बानी हिन्दी, भाषन की महरानी।
चन्द, सूर, तुलसी से या में, कवी भये लासानी॥

दीन मलीन कहत जो या कों, हैं सो अति अज्ञानी।
या सम काव्य छन्द नहिं देख्यौ, है दुनियाँ भर छानी॥

का गिनती उरदू बँगला की, भरे अँगरेजिहु पानी।
आजहुँ या कों सब जग बोलत, गोरे, तुरक, जपानी॥

है भारत की भाषा निहचय, हिन्दी हिन्दुस्थानी।
'जगन्नाथ' हिन्दी भाषा कौ, है सेवक अभिमानी॥

(२)

राष्ट्र-संदेश।

अपनी भाषा है भली, भलो आपुनो देस।
जो कुछ अपुनो, है भलो, यही राष्ट्र संदेस॥१॥

जो हिन्दू हिन्दी तजें, बोलें इङ्गलिश जाय।
उन की बुद्धी पै पर्‌यो, निहचय पाथर आय॥२॥

जाको अपनी जाति कौ, नहिं नेकहु अभिमान।
कूकर सम डोलत फिरै, सो तो वृथा जहान॥३॥

कुल कपूत करनी निरखि, धरनी के उर दाह।
धधकि उठत सोई कबहुँ, ज्वाला गिरि की राह॥४॥

निरखि कुचाल कपूत की, धरनी धरत न धीर।
नैनन निरझर सों झरत, यातें ना तो नीर ॥५॥
देशन में भारत भलो, हिन्दी भाषन माहिं।
जातिन में हिन्दू भली, और भली कुछ नाहिं ॥६॥

(३)

राष्ट्र-संदेश।

जिस हिन्दू को है नहीं, हिन्दी का अनुराग।
निश्चय उस के जान लो, फूट गये हैं भाग ॥१॥
जिस को प्यारी है नहीं, निज भाषा निज देश।
वह सूकर सा डोलता, धरे मनुज का भेष ॥२॥

श्री राम चरित उपाध्याय।

(१)

कुसङ्ग।

अति खल की सङ्गति करने से, जग में मान नहीं रहता है।
लोहे के सँग में पड़ने से, घन की मार अनल सहता है॥१
सब से नीति शास्त्र कहता है, दुष्ट-सङ्ग दुख का दाता है।
जिस पय में पानी रहता है, वही खूब औटा जाता है॥२
उन के प्राण नहीं बचते हैं, जिन को दुर्जन अपनाते हैं।
जो गेहूं के सँग रहते हैं, वे ही घुन पीसे जाते हैं॥३
जहां एक भी दुष्ट रहेगा, वह समाज क्यों चल पावेगा।
जहां तनिक भी अमल पड़ेगा, मनों दूध भी फट जावेगा॥४

(२)

कपूत।

आलस-रत, शोकातुर, लम्पट, कपटी और सदा बलहीन।
मानस-मलिन सदा निद्रातुर, लोभी और अकारण दीन॥
ऐसे सुत से क्या फल होगा, हे चतुरानन दे वरदान।
कभी कपूत किसी को मत दे, चाहे कर दे निस्सन्तान॥१
पर से प्रेम, द्रोह अपने से, करते नित्य दुष्ट-गुण-गान।
गुरुजन की निंदा कर हँसते, अपने को कहते गुणवान॥
काला अक्षर भैंस बराबर, पर तो भी रखते अभिमान।
क्रोधानल में जलते रहते, यही कपूतों की पहचान॥२

———

मिश्र-बन्धु ।

(१)

ब्रह्मचर्य्य ।

ऋषियों ने व्रत ब्रह्मचर्य को नित सनमाना ।
सकल व्रतों का इसे सदा सिरताज बखाना ॥१॥

चढ़ती है जो जोति वदन पर इस व्रत वर से ।
मिलती है जो सकति भुजों को इस जस घर से ॥२॥

वह नहीं स्वप्न में भी कहीं और भांति नर पा सकै ।
वरु खाय हजारों औषधैं सब मंत्रों की दिसि तकै ॥३॥

यह व्रत वर पचीस वरस तक जो नर पालै ।
सिंह सरिस वह गजै सदा रोगों को घालै ॥४॥

लखो जियो अरु सुनो चलो सत वरस अदीना ।
विदित प्रार्थना है जु वेद में यह कालीना ॥५॥

वह जग में ऐसे मनुज की पूरन होती है सदा ।
जो पहले कर व्रत पूर्न यह वरता है पतिनी तदा ॥६॥

बाल व्याह कर करैं अंध जो भोग विलासा ।
कर विवाह वहु रमैं सदा जो मनसिज दासा ॥७॥

आतम हत्या सरिस पाप वे लहैं सदा ही ।
अरु उन के सन्तान सदा निरबल हो जाहीं ॥८॥

जो निजतन तियतन पुत्रतन तनयातन का बल हरै ।
इस बूढ़ पितु की दीन रट वह कुपुत्र कब मन धरै ॥९॥

———

श्री गयाप्रसाद शुक्ल।

लड़कपन।

(१)

चित्त के चाव, चोचले मन के,
वह बिगड़ना घड़ी घड़ी मन के।
चैन था, नाम था न चिन्ता का,
थे दिवस और ही लड़कपन के॥ १॥

(२)

झूठ जाना कभी न छल जाना,
पाप का पुण्य का न फल जाना।
प्रेम वह खेल से खिलौनों से,
चन्द्र तक के लिये मचल जाना॥ २॥

(३)

चन्द्र था और और ही तारे,
सूर्य्य भी और थे प्रभा धारे।
भूमि के ठाठ कुछ निराले थे,
धूलि-कण थे बहुत हमें प्यारे॥ ३॥

(४)

सब सखा शुद्ध चित्त वाले थे,
प्रौढ विश्वास प्रेम पाले थे।
अब कहाँ रह गईं बहारें वे,
उन दिनों रंग ही निराले थे॥ ४॥

(५)

सूर्य्य के साथ ही निकल जाना,
　　दिन चढ़े घूम घाम घर आना।
काम था काम से न धन्धे से,
　　काम था सिर्फ़ खेलना खाना ॥ ५ ॥

(६)

फिर मिला इस तरह नया जीवन,
　　पुस्तकों में पड़ा लगाना मन।
मिल चले जब कि मित्र सहपाठी,
　　बन गया एक बाग़ बीहड़ वन ॥ ६ ॥

(७)

भार यद्यपि कठिन उठाना था,
　　किन्तु उद्योग ठीक ठाना था।
हौसिले से भरा हुआ मन था,
　　और दिन और ही ज़माना था ॥ ७ ॥

(८)

अब दशा वह कहां रही मन की,
　　फ़िक्र है धर्म्म, धाम, तन, धन की।
एक घूँसा लगा गई दिल पर,
　　याद जब आ गई लड़कपन की ॥ ८ ॥

———

आश्वासन ।

(१)

वे उठते भी हैं अवश्य ही जो गिरते हैं ।
दुर्दिन के ही बाद सुदिन सब के फिरते हैं ॥

देखे दारुण दुख वही नर फिर सुख पावे ।
अवनति के उपरान्त घड़ी उन्नति की आवे ॥

रवि रात बीतने पर प्रकट होते प्रातः समय में ।
बस यही सोच कर आप भी धीरज रखिए हृदय में ॥१॥

(२)

होता प्रथम बसन्त ग्रीष्म ऋतु फिर आती है ।
चले पसीना अंग आग सी लग जाती है ॥

पत्ते फल या फूल विना जल, जल जाते हैं ।
पशु-पक्षी भी घोर घाम से घबराते हैं ॥

फिर शीघ्र देखते देखते हरी भरी होती मही ।
आ जाती वर्षा ऋतु भली सुख देती तत्काल ही ॥२॥

(३)

कवियों का सर्वस्व, स्वर्ग की शोभा धारी ।
शिव के भी सिर चढ़ा और आकाश विहारी ॥

अमृत सहोदर चन्द्र, कला जब घटने लगती ।
तब होता है क्षीण और श्री लुटने लगती ॥

वह किन्तु शीघ्र ही पूर्ण हो, होता है फिर अभ्युदय ।
है ठीक नियम यह प्रकृति का, परिवर्तन हो हर समय ॥३॥

(४)

इतने बड़े अनंत तेज की राशि दिवाकर।
तपते तीनों लोक बीच, पूजित हो घर घर॥
किन्तु समय पर राहु उन्हें ग्रस लेता जा कर।
कुछ कर सकते नहीं हज़ारों यद्यपि हैं कर॥
वह पहले होते अस्त या ग्रस्त समस्त प्रभारहित।
फिर होते मुक्त, प्रकाश से युक्त, पूर्व में अभ्युदित॥

(५)

जीव मरण के बाद जन्म पाता है देखो।
कृष्ण पक्ष के बाद शुक्ल आता है देखो॥
चलती है हेमन्त हवा जब ज़ोर दिखाती।
तब होता पतझाड़ न पत्ती रहने पाती॥
फिर वही वृक्ष होते हरे नव पल्लव शोभित सभी।
बस इसी तरह होंगे सुखी उन्नति-युत हम भी कभी॥

———

श्री मैथिली शरण गुप्त।

शकुन्तला की विदा।

(१)

त्यागी, थे मुनि कण्व उन्हें भी करुणा आई,
होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई।
होम शिखा की परिक्रमा उस से करवाई,
और उन्हों ने स्वस्ति-गिरा यों उसे सुनाई॥१॥

(२)

"तुझ को पति के यहां मिले सब भाँति प्रतिष्ठा,
ज्यों ययाति के यहां हुई पूजित शार्मिष्ठा।
सार्व भौम पुरु पुत्र हुआ था उसके जैसे,
तेरे भी कुल-दीप दिव्य औरस हो वैसे" ॥२॥

(३)

"गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो,
सखी भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से,
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उस की रति से" ॥३॥

(४)

"परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूल कर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।
इसी चाल से स्त्रियां सुगृहिणी-पद पाती हैं,
उलटी चलकर वंश-व्याधियां कहलाती हैं" ॥४॥

भारतवर्ष की श्रेष्ठता।

(१)

भूगोल का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहां ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगा-जल जहां।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि-भूमि है, वह कौन ? भारत वर्ष है ॥१॥

(२)

हाँ वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?
भगवान् की भव भूतियों का यह प्रथम भण्डार है।
विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है ॥२॥

(३)

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है, इसके निवासी 'आर्य' हैं,
विद्या, कला-कौशल्य सब के जो प्रथम आचार्य हैं।
सन्तान उन की आज यद्यपि हम अधोगति में पड़े,
पर चिह्न उन की उच्चता के आज भी कुछ हैं खड़े ॥३॥

(४)

उन पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है,
गाते हमीं गुण हैं न उन के, गा रहा संसार है।
वे धर्म पर करते निछावर तृण समान शरीर थे,
उन से वही गम्भीर थे, वर वीर थे, ध्रुव धीर थे ॥

(५)

आदर्श जन संसार में इतने कहां पर हैं हुए?
सत्कार्य्य भूषण आर्य्य गुण जितने यहां पर हैं हुए।
हैं रह गये यद्यपि हमारे गीत आज रहे सहे,
पर दूसरों के वचन भी साक्षी हमारे हो रहे ॥५॥

(६)

सत्पुत्र पुरु-से थे जिन्हों ने तात हित सब कुछ सहा,
भाई भरत से थे जिन्हों ने राज्य भी त्यागा अहा!
जो धीरता के, वीरता के प्रौढ़तम पालक हुए,
प्रह्लाद, ध्रुव, कुश, लव तथा अभिमन्यु सम बालक हुए ॥६॥

(७)

वह भीष्म का इन्द्रिय-दमन, उनकी धरा सी धीरता,
वह शील उन का और उनकी वीरता गम्भीरता।
उन की सरलता और उनकी वह विशाल विवेकता,
है एक जन के अनुकरण में सब गुणों की एकता ॥७॥

("भारत भारती" से उद्धृत)

मौर्य-विजय।

(१)

जग में अब भी गूँज रहे हैं गीत हमारे,
शौर्य्य वीर्य्य गुण हुए न अब भी हम से न्यारे।

रोम, मिश्र, चीनादि कांपते रहते सारे,
यूनानी तो अभी अभी हम से हैं हारे।
सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय।
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥१॥

(२)

साक्षी है इतिहास, हमी पहले जागे हैं,
जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे हैं।
शत्रु हमारे कहां नहीं भय से भागे हैं,
कायरता से कहां प्राण हमने त्यागे हैं ?
हैं हमीं प्रकम्पित कर चुके सुरपति तक का भी हृदय।
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥२॥

(३)

कहां प्रकाशित नहीं रहा है तेज हमारा ?
दलित कर चुके सभी शत्रु हम पैरों द्वारा।
बतलाओ वह कौन नहीं जो हम से हारा ?
पर शरणागत हुआ कहां कब हमें न प्यारा ?
बस, युद्ध मात्र को छोड़ कर कहां नहीं हैं हम सदय ?
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥३॥

(४)

कारण वश जब हमें क्रोध कुछ हो आता है,
अवनि और आकाश प्रकम्पित हो जाता है ॥

यही हाथ वह कठिन कार्य्य कर दिखलाता है,
स्वयं शौर्य्य भी जिसे देखकर सकुचाता है॥

हम धीर वीर गम्भीर हैं, है हम को कब कौन भय?
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय॥४॥

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान।

ठुकरा दो या प्यार करो।

देव! तुम्हारे कई उपासक, कई ढङ्ग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे, कई रंग के लाते हैं ॥१॥

धूम धाम से साज बाज से, वे मन्दिर में आते हैं।
मुक्ता मणि बहुमूल्य वस्तुएँ, लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं ॥२॥

मैं ही हूं गरीबनी ऐसी, जो कुछ साथ नहीं लाई।
फिर भी साहस कर मंदिर में, पूजा करने को आई ॥३॥

धूप दीप नैवेद्य नहीं है, झांकी का शृङ्गार नहीं।
हाय! गले में पहिनाने को, फूलों का भी हार नहीं ॥४॥

स्तुति मैं कैसे करूं कि स्वर में, मेरे है माधुरी नहीं।
मन का भाव प्रकट करने को, मुझ में है चातुरी नहीं ॥५॥

नहीं दान है नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई।
पूजा की भी विधि न जानती, फिर भी नाथ चली आई ॥६॥

पूजा और पुजापा प्रभुवर, इसी पुजारिन को समझो।
दान दक्षिणा और निछावर, इसी भिखारिन को समझो ॥७॥

मैं उन्मत्त प्रेम का लोभी, हृदय दिखाने आई हूं।
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूं ॥८॥

चरणों पर है अर्पण, इसको, चाहे तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो ॥९॥

———

चलते समय ।

(१)

तुम मुझे पूछते हो "जाऊं" ?
मैं क्या जवाब दूं तुम्हीं कहो ।
"जा"...कहते रुकती है ज़बान,
किस मुँह से तुम से कहूं "रहो" ?

(२)

सेवा करना था जहां मुझे,
कुछ भक्ति-भाव दरशाना था ।
उन कृपा कटाक्षों का बदला,
बलि होकर जहां चुकाना था ॥

(३)

मैं सदा रूठती ही आई प्रिय,
तुम्हें न मैं ने पहिचाना ।
वह मान-बाण चुभता है,
अबतो देख तुम्हारा यह जाना ॥

———

श्री लक्ष्मीधर बाजपेयी।

ग्रीष्म का अन्तिम गुलाब।

(१)

ग्रीष्म काल के अन्त समय की,
यह कलिका है अति प्यारी।
विकसी हुई अकेली शोभा,
पाती इस की छवि न्यारी ॥१॥

(२)

कलियां और खिली थीं जो सब,
थीं इस की सखियां सारी।
सो सब कुम्हला गईं देखिये,
सूनी है उन की क्यारी ॥२॥

(३)

सुख दुख दोनों एक साथ ही,
आते हैं बारी बारी।
इन कलिकाओं से सूचित है,
विधि-विपाक यह संसारी ॥३॥

———

श्री जयशंकर प्रसाद ।

(१)

प्रायः लोग कहा करते हैं रात भयानक होती है ।
घोर कर्म भीमा रजनी के आश्रय में सब होते हैं ॥

किन्तु नहीं, दुर्जन का मन उस से अँधियारा होता है ।
जहां सरल के लिये अनेक अनिष्ट विचारे जाते हैं ॥

जिस की संकीर्णता निरख कर स्वयं अंधेरा घबरावे ।
उस खल हृदय से कहीं अच्छी होती है भव में रजनी ॥

जहां दुखी प्रेमी निराश सब मीठी निद्रा में सोते ।
आशा स्वप्न कभी भी तो तारा सा झिलमिल करता है ॥

चिर विछोहियों को क्रीड़ा वश होकर निद्रा बीच कभी ।
कुहुक कामिनी मिला दिया करती है, इतना क्या कम है ॥

(२)

पथिक प्रेम की राह अनोखी भूल भूल कर चलना है ।
घनी छाँह है जो ऊपर तो नीचे कांटे बिछे हुए ॥

प्रेमयज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा ।
तब तुम प्रियतम स्वर्ग विहारी होने का फल पाओगे ॥

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना ।
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिस के आगे राह नहीं ॥

———

श्री पुरोहित लक्ष्मीनारायण ।

जीवन-गीत ।

(१)

शोक-भरे छन्दों में मुझ से,
कहो न "जीवन सपना है" ।
जो सोता है वह है मृतवत्,
जग का रंग न अपना है ॥१॥

(२)

जीवन सत्य, नहीं झूठा है,
चिता नहीं इसका अवसान ।
"तू मिट्टी, मिट्टी होवेगा",
उक्ति नहीं यह जीव निदान ॥२॥

(३)

भोग विलास नहीं, न दुःख है,
मानव-जीवन का परिणाम ।
करना ही चाहिये नित्यप्रति,
अधिकाधिक उन्नति का काम ॥३॥

(४)

गुण हैं अमित, समय चञ्चल है,
यद्यपि हृदय बहुत बलवान् ।
तद्यपि ढोल समान बिलखता,
चिता ओर कर रहा प्रयान ॥४॥

(५)

जग की विस्तृत रण-स्थली में,
जीवन के झगड़ों के बीच।

नायक बन कर करो काम सब,
पशुओं ऐसे बनो न नीच ॥५॥

(६)

नहीं भविष्यत् पर पतियाओ,
मृतक भूत को जानो भूत।

काम करो सब वर्तमान में,
सिर प्रभु, मन दृढ़ यह करतूत ॥६॥

(७)

सज्जन चरित सिखाते, हम भी
कर सकते हैं निज उज्ज्वल।

जग से जाते समय रेत पर,
छोड़ें चरण-चिन्ह निर्मल ॥७॥

(८)

चरण-चिन्ह वे देख कदाचित्,
उत्साहित हों वे भाई।

भवसागर की चट्टानों पर,
नौका जिन की टकराई ॥८॥

(६)

हो सचेत श्रम करो सदा तुम,
चाहे जो कुछ हो परिणाम।
सदा उद्यमी हो कर सीखो,
धीरज धरना, करना काम ॥६॥

श्रीमती कुमारी कमला ।

साध ।

(१)

मुझे साध थी देख सकूँगी—
पर तू अन्तर्धान हुआ ।
अपना मान लिए बैठी थी—
प्राणों का अपमान हुआ ॥१॥

(२)

हे स्वामी ! यह जीवन विषमय—
है, इस का अब अन्त करो ।
इस विनाश-मधु की मादकता—
छू कर आज अनन्त करो ॥२॥

(३)

यहां नहीं तो वहां सही—
पथ पर अशेष हो जाऊँगी ।
कण-कण में तुमको खोजूँगी—
मिट्टी में खो जाऊँगी ॥३॥

('चांद" जुलाई १९३०)

———

श्री गयाप्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य 'श्री हरि'।

कामना।

(१)

मैं पागल हूं, मतवाला हूं,
जग कहता तो कहने दो।
भगवन्! प्रेम कुटी में अपनी,
मुझको बैठा रहने दो॥

(२)

ये आंसू मोती हैं मेरे,
माला मुझे बनाने दो।
हैं टूटी लड़ियाँ, पर इन से,
अपना कण्ठ सजाने दो॥

(३)

कहते हैं, प्रेमासव पीकर,
सुध-बुध सब खो जाती है।
प्रेमी-प्रेम-पात्र में केवल,
एक वृत्ति हो जाती है॥

(४)

करुणामय! उपहार-हार यह,
मेरा बस अपना लेना।
मेरे तेरे-भेदभाव का,
अन्त अन्त में कर देना॥

(कल्याण आषाढ़ १९८७)

———

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'।

बिखरा फूल।

(१)

धूलि-धूसरित पड़ा हुआ था—
पथ में एक अनोखा फूल।
पादाहत हो, बिखर बनी थीं—
उस की सब पंखड़ियां धूल॥

(२)

मैंने पूछा—"फूल! पड़े हो—
क्यों इस पथ में हो यों म्लान?
कहाँ गया वह प्यारा माली,
कहाँ गये वे भ्रमर सुजान"?

(३)

हंस कर बोला फूल दुलारा,
"भोले! तुम किस जग के जीव?
होती है जो विपद् पराई—
देख तुम्हारे मन में पीर"॥

(४)

"इस जगती में कौन किसी का—
सूत्रधार है स्वार्थ महान्।
छल-बल से जो काम बनाले,
कहलाता है वह धीमान्"॥

(५)

"रसिक सभी, बनते थे अपने,
मैं था जब रस का भण्डार।
नीरस देख उदास हुये कुछ,
करते हैं कुछ व्यंग-प्रहार॥

(६)

"पड़ा-पड़ा इस पथ में प्यारे—
पथिकों को करता उपदेश।
माया-घन में भटक रहे क्यों?
देखो 'वह' निज पुण्य-प्रदेश!!"

(कल्याण आषाढ़ १९८७)

———

श्री जैनेन्द्रकिशोर ।

मेरी मैया ।

किस ने अपने स्तन से मुझको सुमधुर दूध पिलाया था ?
लेकर गोद, प्रेम से थपकी दे दे मुझे सुलाया था ?
चूम चूम कर किसने मेरे गालों को गरमाया था ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

विलख विलख कर रोता था जब नींद न मुझको आती थी ;
आरी निंदिया ! आरी निंदिया ! कहकर कौन सुलाती थी ?
और प्यार से पलने में रख मुझ को कौन झुलाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

बालपने में पलने ऊपर मुझे नींद जब आती थी ;
मुख मेरा विलोक मन ही मन कौन महा सुख पाती थी ?
और प्यार के आँसू बैठी बैठी कौन बहाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

व्यथित और बीमार देख कर मुझे कौन अकुलाती थी ?
बैठी बैठी मेरे मुख पर आँखें कौन गड़ाती थी ?
औ मेरे मरने के डर से आँसू विपुल बहाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

मुझे गिर गया देख, दौड़ कर, तत्क्षण कौन उठाती थी ?
फिर मेरा जी बहलाने को बातें कौन बनाती थी ?
अथवा फूँक फूँक कर अच्छी हुई चोट बतलाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

जिस ने प्यार किया अति मेरा कैसे उसे भुलाऊँगा?
नहीं स्वप्न में भी मैं उस से मन अपना विलगाऊँगा,
गुण उस के गा कर मैं उस से अविरल प्रीति लगाऊँगा।
मेरी मैया! मेरी मैया!!

सोच सोच कर इन बातों को जी मेरा घवड़ाता है;
ईश कृपा से यह शरीर यदि इस जग में बच जाता है।
एक दिवस देखना दास यह फल इस का दिखलाता है॥
मेरी मैया! मेरी मैया!!

कमर जायेगी जब झुक तेरी और बाल पक जावेगा;
मेरा भुज लम्बा बलशाली तेरा टेक कहावेगा।
और बुढ़ापे का दुख तेरा क्षण भर में विनसावेगा॥
मेरी मैया! मेरी मैया!!

जब तेरा शिर शय्या ऊपर पड़े पड़े झुक जावेगा;
तब इस सेवक की आवेगी बारी, तुझे उठावेगा।
और, उस समय, प्रबल प्रेम से उमँड अश्रु बहावेगा॥
मेरी मैया! मेरी मैया!!

———

शब्दार्थ-कोष।

कबीर

महात्मा कबीरदास जी का जन्म १४५५ वि० (१३९८ ई०) तथा मृत्यु १५५२ वि० (१४९५ ई०) में बताई जाती है। आप काशी के रहने वाले थे। जन्म के ब्राह्मण थे पर बाल्य काल से ही नीरु जुलाहे के यहां पले थे। इन के गुरु का नाम रामानन्द था। इनकी स्त्री का नाम 'लोई' और पुत्र का नाम 'कमाल' था। आप बड़े सन्त कवि थे। पढ़े लिखे कुछ न थे, तो भी भक्ति और ज्ञान की कविता में अद्वितीय थे। आपकी शिक्षा हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिये थी। वे किसी से वैर न रखते थे। 'अल्ला' 'राम' 'मुहम्मद' आदि को वे एक रूप से जानते थे। उनके नाम पर भारतवर्ष में एक 'कबीर पन्थ' भी चला है जिसके अनुयायी आज कल भी ८०, ९० हज़ार से अधिक हैं। सिक्ख धर्म पर इनकी शिक्षा का विशेष प्रभाव पड़ा है। कहते हैं कि गुरु नानक देव जी भी इनके शिष्य थे। आप ने हिन्दू मुसलमानों का विरोध हटाने में बड़ा प्रयत्न किया था। यह इतने सर्व प्रिय थे कि इनके मरने पर इनके शव को लेने के लिये हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा हो पड़ा। हिन्दू कहें यह हिन्दू हैं, हम इन्हें जलायेंगे। मुसलमान कहते थे कि यह मुसलमान हैं, हम इन्हें दफन करेंगे। पर ज्यों ही शव पर से कपड़ा उठाया तो सिवाय फूलों के और कुछ न मिला। इन में से आधे फूल हिन्दुओं ने लेकर काशी में 'कबीर चौरा' बनाया और आधे मुसलमानों ने लेकर मगहर में कबर बनाई। यह दोनों स्थान अब तक पूजे जाते हैं।

साधु स्तुति

१ म्यान=तलवार का ढकना

२ साकत=शाक्त वाममार्गी

३ गन्धी=१ अतर बेचने वाला
२ खुशबू

सुवास=खुशबू

वास=१ संगति, २ सुगन्धि

५ सूप=छाज

,, गहि=ग्रहण करना

सार=सत उत्तम वस्तु

थोथा=निकम्मी चीज कूड़ाकरकट

६ नेह=स्नेह, प्यार

,, खेह=धूल राख

७ खाँडे=गंडासा (तलवार)

१० लेंहडे=झुण्ड

११ सूरा=शूरवीर

दल=झुण्ड

१२ संचै=संचयकरे जोड़ के जमा रखे

१३ लखा, लखि=देखना

आरसी=शीशा

अलख=अव्यक्त, परमात्मा
(अलक्ष)

१४ हिम=बरफ

१५ गजदन्त=हाथी का दाँत

बाहुरैं=दोबारा

प्रेम भक्ति।

१ जरिजाय=जल जाये

२ चौगान=खुला मैदान, खेलने का स्थान

रंक=गरीब

३ बाड़ी=वाटिका, बगीची

हाट=दुकान, बाजार

सीस=सिर

४ अघट=न घटने वाला, एक रस

५ चीन्हे=पहिचाने

भीना=लिप्त, मगन

६ संचरै=फिरे, विद्यमान रहे

७ घींच=गर्दन, गिच्ची

भुंई=भूमि, ज़मीन

चितवे=देखे

८ नेम=नियम

९ नैन=नयन, आंखें

१० खड्ग=तलवार

१२ खाला का घर=मासी का घर
सहज काम

१३ निभावन=निभाना

मिश्रित दोहे।

२ कर=हाथ

दहुं=दसों, दस

३ करका=हाथ का

मनका= १ माला का मनका, २ दिल का

४ सेव=सेवा

६ पाहन=पत्थर

पहार=पहाड़

७ खुदाय=खुदा परमात्मा

८ पोथी=पुस्तक

९ मीन=मछली

वास=गन्ध, बदबू

१२ मनुवाँ=मन

साहंसाह=शाहनशाह, बादशाह

१४ बावरे=बावला, मूर्ख पागल

१६ नारी=१ स्त्री, २ नाड़ी

साखियां

१ साहेब=साहिब, मालिक परमात्मा

कतरनी=कैंची

लखता है=देखता है

नेव=नींव

मनसूबा=इरादा, इच्छा

२ गजी = खद्दर, गाढ़ा मोटा कपड़ा

२ कर्ता = बनानेवाला परमात्मा

वर्ण = जाति-ब्राह्मणआदि चार वर्ण

कृत्रिम = बनावटी=बातूनी

तुरुक = मुसलमान

सुनति = सुन्नत, मुसलमानों का एक संस्कार और मुसलमानी की निशानी

१ कारी पीरी = काली और पीली (रंग वाली)

१ बिलगाई = अलग करदो

२ भजु = भजन करो

सारंगपानि = शार्ङ्गपाणि विष्णु

३ कनक = सोना

दुई = द्वैध, भेद, दूजापन

नेवाज = मुसलमानों की नमाज़

बिगत = भिन्न भिन्न

बादे=वृथा

४ छुवन = छूने

४ पायन=पैर

तर=तले नीचे

खाला=मासी

जेवन=खाने

पारन=व्रत के बाद का पहिला खाना

५ भिस्त=स्वर्ग

६ वधिक=कसाई

परचै=परिचय

केतिक=कितने

बहिगे=बह गये

सूरदास।

आप का जन्म लगभग १५४० वि० (१४८३ ई०) तथा मृत्यु १६२० वि० (१५६३ ई०) में बतलाई जाती है। आप देहली के पास 'सीही' नामक ग्राम के निवासी थे। आप जाति के ब्राह्मण थे। पिता का नाम रामदास था। आप के ६ भाई मुसलमानों के साथ लड़ाई में मारे गये थे। कविवर सरदार इनको चन्द्र बरदई का वंशज बतलाता है। आप यद्यपि जन्म के अन्धे न थे तो भी एक बार मनोविकार के कारण इन्होंने अपनी आंखों को फोड़ डाला था। इसी लिये अन्ध कहे जाते हैं। इनकी कविता बहुत ही सर्वप्रिय हुई है। आप के गुरु का नाम वल्लभाचार्य था। आप कृष्ण के बड़े भक्त थे, और अपनी कविता की लहर को भी इन्होंने कृष्ण भक्ति की ओर ही ढाल दिया है। आपने 'सूरसागर' आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। हिन्दी कवियों में आप का स्थान सबसे ऊंचा है। आप को 'सूर्य' और तुलसीदास को 'चन्द्रमा' की उपमा दी गई है। यह बड़े विद्वान् और पुराणों के वेत्ता थे। इनकी अगाध भक्ति 'शृंगार' की सीमा तक पहुंच जाती है।

१ मोद=खुशी, प्रसन्नता
२ अनत=अन्यत्र, और जगह
३ यचै=मांगे
वारि=पानी
४ पावक=अग्नि, आग
५ मीन=मछली
६ परेवा=पारावत, कबूतर
गनो=समझो (देखो)
तीय=स्त्री
उर=छाती, कण्ठ
७ सुमर=स्मरण करो
कुरंग=हरिण
सर=बाण
८ खिसे=घिसे, समाप्त हो, घटे

९ अनुदिन=प्रतिदिन, हररोज

१० संघाती, सहायक, मददगार

१२ सोधे=ढूँडे

खग=पक्षी

ठौर=स्थान

१५ पोखत=हिलाना-जुलाना, फेरना

१६ चिकुर=बाल, केश

१७ औसर=अवसर पर, समय२ पर

१९ परिधान=पहिरावा, कपड़े, लिबास

२० अनंग=कामदेव

कवित्त

१ अनत=अन्यत्र, और जगह

कमल नयन=कृष्णभगवान्, विष्णु

अंबुज=कमल

छेरी=छेली, बच्छी

२ बलैया=बला

यसुमति=यशोधा, बाबा नंद की स्त्री

हरख=हर्ष, खुशी

३ धौरी=धौली गाय

पय=दूध

वेणी=सिर के बाल

झँगुली=कंठी, हार

ऐहौं=आऊंगा

दाऊ=भाई

नवल=नई

४ भोर=प्रातःकाल, सवेरा

पठायो=भेजा

वरवस=जबरदस्ती

भोरी=भोली

जायो=पुत्र

लकुट=लाठी, छड़ी

कमरिया=कम्बल

मीराबाई।

आप के जन्म-काल के विषय में बहुत मतभेद है, और अभी तक पूर्ण रूप से कोई भी तिथि निश्चित नहीं की जा सकी। दन्त कथा है कि आप गोस्वामी तुलसीदास जी की समकालीन थीं। आप क्षत्राणी थीं और राठौर खानदान से सम्बन्ध रखती थीं। इनका जन्म 'कुड़की' या 'चौकड़ी' नामक ग्राम में हुआ कहा जाता है। प्रारम्भ से ही आप 'गिरिधर गोपाल' कृष्ण की परम भक्त थीं। आप की कविता से पता चलता है कि आप के गुरु महात्मा रैदास जी थे। विवाह के दस बरस भीतर ही आप विधवा हो गईं। तब लोक लाज त्याग कर साधुसेवा सत्सङ्ग और कृष्ण भक्ति में अपने आप को लगाने के लिये घर छोड़ कर मथुरा आदि स्थानों को चली गईं। अन्त में द्वारका पहुंचीं। घर वालों ने वापिस बुलाने का बड़ा यत्न किया पर वे द्वारका में ही रहीं और अन्त में वहीं प्राण त्याग दिये। आप की कविता बहुत मीठी और प्रेम भक्ति से भरी हुई है। आप का प्रेम 'विषय-वासना' की दुर्गन्ध से रहित है।

(१)

१ कासूँ=कैसे

२ धान=धन दौलत, खाना पीना

विरह=जुदाई, विछोड़ा

३ रैण=रात

नैण=नयन

४ पंथ=रास्ता

बुहारूं=बुहारी दिलाऊं, साफ करूँ

डगर=गली, रास्ता

ऊबी=उकता गई

(२)

दिवाणी=पागल, भक्त

सेज=शय्या, बिछौना

गगन=आसमान

सँवलिया=सांवला, श्री कृष्ण

तुलसीदास।

आप हिन्दी भाषा के चोटी के महाकवियों में से हैं। आप का जन्म विक्रम सं० १५८६ (१५३२ ई०) में राजापुर में और मृत्यु सम्वत् १६८० (१६२३ ई०) में असी और गङ्गा के सङ्गम पर हुई। कहते हैं कि यह एक अशुभ नक्षत्र में पैदा हुए थे, जिसका फल माता पिता को बहुत बुरा था। अतः ज्योतिषियों के कहने पर इनको शिवद्वार पर चढ़ा दिया गया। वहां से इनको एक साधु ने पाला पोसा और राम की भक्ति की गहरी नींव इनके दिल में जमा दी। तदुपरान्त इनका विवाह होने पर यह एक बार स्त्री से मिलने के लिये अपने ससुराल चले गये। वहां स्त्री को बहुत लज्जा आई और उस ने इनको धिक्कारा। वहां से इनका मन खट्टा हो गया और यह साधु बनकर काशी चले गये और तीर्थाटन करते रहे। कहते हैं कि वृद्धावस्था में अनजान में अपनी स्त्री से इनकी भेंट हो गई पर इन्होंने उसको अपनाना अस्वीकार कर दिया। आप के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। आप के गुरु का नाम ' नर हरिदास ' था। आप श्री राम के परम भक्त थे। यहां तक कि कृष्ण की मूर्ति को भी राम की शकल में धनुषधारी देखा करते थे। कहते हैं कि इन्होंने ' हनुमान् ' को सिद्ध किया हुआ था। ' राम ' के साथ इनकी इतनी भक्ति थी कि एक बार एक चाण्डाल ने राम २ कही और इन्होंने उसके हाथ का भोजन कर लिया। लोगों को प्रतिवाद करने पर इन्होंने उत्तर दिया कि जो राम को भजता है वह मुझे प्यारा है। आप की प्रसिद्ध पुस्तक

'रामचरितमानस' है जिसको 'तुलसी रामायण' भी कहते हैं। यह पुस्तक बहुत उत्तम है और इंगलैण्ड, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों में भी इस का बहुत मान है। इसका अंग्रजी अनुवाद भी हो चुका है। अकबर बादशाह ने इनका एक चित्र बनवाया था जो सुप्रसिद्ध लाला सीताराम के पास है।

१ बंदौ=वंदना करता हूं
१ उभय=दोनों
२ दारुन=महाघोर दुखदायी कठिन
३ सरिस=सदृश, समान
४ निगम=वेदशास्त्र
८ पातक=पाप
६ बैन=वचन
भाजन=पात्र, अधिकारी
अमरपति=इन्द्र } स्वर्ग
ऐन=अयन, भवन }
११ तरु=वृक्ष
१३ महि=पृथ्वी जमीन
१४ तेज=अग्नि प्रकाश
बुधसेवकाई=विद्वानों की सेवा
१८ द्रवहिं=पिघलजाते हैं, प्रसन्न होते हैं
२० भव=संसार
२१ अघ=पाप
२२ अजस=अयश, अपमान
२४ घरी=घड़ी, समय
२४ कोविद=पंडित
खल=दुष्ट
२६ स्वान=कुत्ता
परिहरिय = तजिये, दूररहिये
२७ सुधा = अमृत
जलद = मेघ
विरंचि = ब्रह्मा

———

रहीम ।

आप का पूरा नाम नवाब अब्दुलरहीम खानखाना था । आप का जन्म सम्वत् १६१० (१५५३ ई०) और मृत्यु सम्वत् १६८२ (१६२५ ई०) में हुई । आप के पिता का नाम बैरामखां था । रहीम अकबर के प्रधान सेनापति मन्त्री और दरबार के नवरत्नों में से एक थे । आप ने बड़ी२ लड़ाइयों में भाग लिया । यह हिन्दी, उरदू, संस्कृत, और फारसी के अच्छे वेत्ता थे । और सभी भाषाओं में आपने कविता लिखी है । श्रीकृष्ण भगवान् में आपकी अगाध भक्ति थी । हिन्दू पुराण और हिन्दू धर्म के साथ आप का विशेष प्रेम था । आप बड़े दानी, दयालु विद्वान् और युद्धवीर थे । तिस पर भी अकबर की मृत्यु पर जहांगीर ने इन्हें राजद्रोह का लांछन लगा कर इन की सारी सम्पत्ति ज़ब्त करली, और इन्हें जेलखाने में कैद कर दिया । वहां से छूटने पर आप का अन्तिम जीवन बहुत दुःखमय और गरीबी में व्यतीत हुआ । आप की कविता बड़ी सरल और नीति पूर्ण है । आप ने हिन्दी में 'रहीम सतसई' 'बरवै नायिकाभेद' और 'मदनाष्टक' आदि कई पुस्तकें लिखी हैं ।

१ तरुवर=वृक्ष
  सरवर=तालाब
  सुचहिं=संचय करते हैं, जोड़ते हैं
२ उदत=उदय होता है
३ अथवत=अस्त होता है
४ जीवो=जीना
  दीबो=दान देना
५ तरवारि=तलवार
६ कंज=कमल
७ मराल=हंस
८ सफरिन=मछलियां
९ विपुल=बहुत
१० याचकता=मांगना

बावन आंगुर गात=५२ अंगुल का देह।

यहां पर विष्णु के बावन अवतार की पौराणिक कथा का प्रसङ्ग है। राजा बली से विष्णु ने बौना बन कर तीन पैर पृथ्वी मांगी थी। तिस पर कवि कटाक्ष करता है कि मांगने वाले को छोटा होना ही पड़ता है।

११ आदि=प्रारम्भ शुरू

हरि बाढे आकाश लों=विष्णु आकाश तक बढ़ गये।

यहां पर भी पिछली (१०) ही कथा का प्रसङ्ग है। राजा बली से तीन पैर मांगकर विष्णु ने एक पैर में तो सारी पृथ्वी घेर ली। (इसका उद्धरण अगले दोहा २ में है)। दूसरा पैर आकाश तक फैला दिया और तीसरे पैर में वैकुण्ठ तक की जगह नाप ली। इस प्रकार कपट से तीन पैर जगह मांगकर सारा ब्रह्माण्ड उससे ले लिया। यहां पर कवि का अभिप्राय यह है कि यद्यपि विष्णु आकाश तक बढ़ गया तो भी उसका नाम तो बौना (बावन अवतार) ही रहा। यह इसलिये कि उसने पहिले भीख मांगी थी इसलिये छोटा होना पड़ा। अब चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो जावे पर उसका नाम तो बौना ही रहेगा॥

१२ कितो-कितना ही

तीन पैर वसुधा करी=तीन पैर में सारी जमीन घेर ली-(११ दोहे का नोट देखो)।

तऊ=तोभी

१४ समाहिं=समा जाते हैं चले जाते हैं

पच्छ-पक्ष, पंख

१६ राम न जाते हरिन संग=

यहां पर रामायण की कथा का प्रसङ्ग है। जब रावण ने सीता को साधु का वेप बना कर चुराना चाहा था तो पहिले मारीच को मृग के रूप में भेजा था जिसको मारने के लिये राम चले गये थे और पीछे से लक्ष्मण भी चले गये।

और फिर सीता को अकेला जान कर रावण उसे चुरा ले गया था। यहां पर कवि का अभिप्राय यह है कि यदि किस्मत का पता होता तो राम हरिन के पीछे जाते ही न, और न रावण सीता को चुराता, और न फिर राम का रावण के साथ युद्ध होता। यह सब बखेड़ा इसी लिये हुआ कि होनहार ही ऐसी थी।

भावी=होनहार, किस्मत

कतहुं-कभी, अगर

१७ बेर=बेरी

केर=केला

१८ इतराय=ऐंठता है अकड़ दिखाता है, घमण्ड करता है।

प्यादे से फरज़ी भयो=

यहां पर शतरंज की खेल की तरफ इशारा है। इस खेल में प्यादा यदि बिना मरे फरजी के घर तक पहुंच जावे तो फरजी बन जाता है फिर वह टेढ़ा चलता है। भाव यह है कि यदि छोटे से बड़ा हो जावे तो वह और भी घमण्ड दिखाता है

१९ इस दोहे में भी शतरंज के खेल का ही प्रसङ्ग है। अर्थात् प्यादा सीधा चलता है तो समय पाकर वज़ीर बन जाता है। पर फरज़ी (वज़ीर) चूंकि टेढ़ा चलता है इसलिये वह कभी मीर (बादशाह) नहीं बन सकता। कवि का कटाक्ष यह है कि यह टेढ़े और सीधे का फल है कि सीधा उन्नति कर जाता है पर कुटिल कभी उन्नति नहीं कर सकता।

२१ विषया=व्यसन बुरी बातें

वमन=उल्टी, कै

२२ कमला=लक्ष्मी, धन

पुरुष पुरातन=१ विष्णु २ बूढ़ा आदमी

२३ रीते=खाली होने पर

अनरीते=मर्यादाशून्य, बेअसूले, अधर्मी, भरा हुआ

दीठ=दृष्टि

२४ बापुरो=बिचारा

इस दोहे में कृष्ण और सुदामा की मित्रता का उद्धरण है।

२५ दीनता=ग़रीबी

२७ भजुंग=सांप

२८ मूर=जड़, मूल

२९ गिरिधर=

यहां पर कृष्ण की बचपन की कथा का प्रसङ्ग है। बालकपन में कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को उठा-लिया था इसलिये उस का नाम 'गिरिधर" अर्थात् पर्वत को उठा-ने वाला है। किन्तु कृष्ण बंसरी बजाता था इसलिये उसको लोग 'मुरलीधर' भी कहते हैं। कवि का अभिप्राय यह है कि बड़ों को यदि छोटे नाम से भी पुकारा जावे तो उनकी कुछ क्षति नहीं होती जैसे कृष्ण को गिरिधर" होने पर भी 'मुरलीधर कहा जाता है तो भी वह बुरा नहीं मानता नाहीं उसकी कुछ हानि होती है।

३१ गुर=गुड़

३२ पथिक=मुसाफिर

३३ भौन=भवन, स्थान

३४ तपत रसोई भीम=

इस दोहे में महाभारत की उस कथा से उपमा दी गई है जिसमें पाण्डवों के वनवास के दिनों में राजा विराट के यहां एक साल के लिये गुप्त-वास का वर्णन है। वहां पर भीम रसोई बनाने का काम करता था। दोहे का तात्पर्य यह है कि यदि पुरुषार्थ करने से मनुष्य सम्पत्ति को पा सकता तो भीम जैसे नर-शूर रसोइये का काम क्यों करते। अतः पुरुषार्थ से भाग्य बलवान है।

३६ बारे= बले, जले २ घटे

१ बढ़े=बड़ा होवे बुझजाये, २ उन्नति करे।

३७ ससि = चांद

३८ पचवत = पचाता है चकोर की यह प्रकृति है कि वह चांद पर मुग्ध होता है। और उसका भोजन अंगारे हैं।

३९ पंक - कीचड़

लघुजिय = छोटे२ जीव

उदधि = समुद्र ।

४० कलारिन = कलाली, शराब बेचने वाली

मद = शराब

४१ रिस = ईर्ष्या

४२ गुन = १ गुण, २ रस्सी

सलिल = जल

४३ दग = आंख

४५ तम = अन्धेरा

उलूक = उल्लू

४७ गोय = छिपाकर

४८ नीके = अच्छे

५० अमी = अमृत

५० हलाहल = विष

मद = मस्ती, शराब

चितवत=देखते हैं

५१ पानी= १ आत्म-सम्मान, २ जल

५३ गाढ़े = कठिन, मुशकिल

५५ उतपात – उपद्रव शरारत

५७ मुनि पत्नी तरी =

एक बार एक हाथी मस्ती में पृथ्वी खोद२ कर अपने सिर पर धूल फेंक रहा था। उस समय किसी ने रहीम से पूछा कि यह हाथी क्यों अपने सिर पर धूल फेंक रहा है तो रहीम ने झट से यह दोहा बना कर उत्तर दिया। इस में रामायण में आई हुई कथा का वर्णन है कहते हैं कि जब राम विश्वामित्र के साथ वन में फिर रहे थे तो रास्ते में उनके पावों की धूल एक शिला पर पड़ी और वह शिला झट गौतम मुनि की स्त्री अहल्या बन कर राम को धन्यवाद देने लगी। अहल्या को किसी एक अपराध के कारण उस के पति गौतम ने शाप देकर शिला बना दिया था। और वह राम के पाओं की धूल से तर गई। अतः यह हाथी भी उसी धूल को ढूंढता है जिस से गौतम मुनि की पत्नी अहल्या तरी थी। रहीम के मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं के ग्रन्थों से इतना परिचय होना उसकी हिन्दू धर्म की ओर प्रवृत्ति का फल है।

५८ यद्यपि हनुमान् ने भी लङ्का की लड़ाई में संजीवनी लाने के लिये पर्वत को उठाया था तो भी उसे कोई 'गिरिधर' नहीं कहता। अर्थात् छोटे मनुष्य बड़ा काम कर भी दिखावें तो भी उन की बड़ाई नहीं होती।

५९ उरज=स्तन

६० निशि वासर=रात दिन

रसखान ।

आप दिल्ली के पठान थे। आप का जन्म सम्वत् १६१५ (१५५८ ई०) तथा मृत्यु सम्वत् १६८५ (१६२८ ई०) में हुई। मुसलमान होते हुए भी हिन्दू धर्म के साथ इनकी विशेष श्रद्धा थी और श्रीकृष्ण के आप परम भक्त थे। कई बार यह वेष बदल कर गोविन्द कुण्ड पर श्री नाथ जी के मन्दिर में पूजा के लिये आते थे, और कई बार पहचाने जाकर पुजारियों की कड़ी यातनायें सहते थे। वैष्णवों की पुस्तकों में लिखा है कि यह एक साहूकार के लड़के के साथ बहुत प्रेम किया करते थे। एक पल भर भी उससे न बिछुड़ते थे और उसका जूठन भी खाते थे। फिर ताने लगने पर इनका प्रेम एकदम लड़के से हटकर श्रीकृष्ण पर हो गया। आप की कविता शुद्ध व्रज भाषा में है। आप प्रेम के सच्चे उपासक थे। आप ने 'सुजान रसखान' और 'प्रेम वाटिका' आदि पुस्तकें लिखी हैं।

१ बसौं = निवास करूँ

ग्वारन = ग्वाले

धेनु = गाय

मंझारन = मध्य

पुरन्दर = इन्द्र

कृष्ण ने बालकपन में इन्द्र से लड़ाई छेड़ कर अपनी रक्षा के लिये गोवर्द्धन-पर्वत को छत्र बना कर हाथ पर उठा लिया था। यहां उसी का वर्णन है।

कालिंदी = यमुना

कूल = किनारा

२ गानन = गाने, गीत

कितुं = कहीं

चायन = चाव

पायन = पांव, पैर

३ सेस = शेष नाग

दिनेस = सूर्य्य

सुरेस = इन्द्र

पचिहारे=थक गये, परिश्रम कर के हार गये

अहीर=ग्वाले, दूधवाले

छोहरियां=लड़कियां

४ गोहिनी=स्त्री, देखो नोट रहीम दोहा नं० ५५

संक=शङ्का, भय, दुःख

५ ब्रह=विरह, बिछोड़ा, जुदाई

आंच=अग्नि

बिरहान(झ)लतें=बिछोड़े की आग से

गर में=गले में

दोहे

१ छवि=कान्ति, शोभा

सर=बाण

२ दम्पति=पति, पत्नी

३ सूछम=सूक्ष्म

पतरो=पतला

———

कविवर-वृन्द ।

आप का जन्म सम्वत् १७४२ (१६८५ ई०) में माना जाता है। आप औरङ्गज़ेब के दरबार के कवि थे। औरङ्गज़ेब का पोता अज़ीमुश्शान बङ्गाल, बिहार और उड़ीसे का सूबेदार था। उसने वृन्द को औरङ्गज़ेब से मांग लिया था और अपने पास रखा था। यह ढाके में रहा करते थे। सम्वत् १७६१ में इन्होंने ढाके में 'वृन्द सतसई' लिखीः ऐसा उनकी पुस्तकों से प्रतीत होता है। आप जाति के गौड़ ब्राह्मण थे। आप की कविता अति सरल और नीतिविषयक है। नीति में आप से बढ़कर और कोई कवि हिन्दी में नहीं हुआ है। आप के दोहे साधारण बोल चाल में दृष्टान्त और कहावतों के तौर पर प्रयुक्त होते हैं। गावों तक में इनका प्रचार है। आपने 'वृन्द सतसई', 'भाव पंचासिका' और 'शृंगार शिक्षा' आदि कई ग्रन्थ लिखे हैं।

१ रीते=रिक्त, खाली सूखे
२ घन=बादल
३ सौर=रज़ाई
४ पिसुन=चुग़लखोर
दाध्यो=जलाया हुआ
६ छीलरताल = छप्पड़, छोटा कच्चा तालाब
७ सिख=शिक्षा
हिये=हृदय में
भेषज=औषधि, दवाई
८ करी=हाथी

११ सयान=स्याना, अक्लमन्द
जारिये=जला दीजिये
१२ हिय=हृदय
१३ परचै=परिचय मित्रता
१३ मलयागिरि=मलय पर्वत, जहां चन्दन पैदा होता है।
१५ अबोध=मूर्ख
नकटे=जिसकी नाक कटी हुई हो
१७ रिस=ईर्ष्या, दु:ख
८ गुंजा=रत्ती
९ काजर=काजल, सुरमा

वैताल ।

वैताल का जन्म सम्वत् १७३४ (१६७७ ई०) में कहा जाता है। आप विक्रम शाह के दरबारी कवि थे। इनके प्रायः सभी छन्द 'विक्रमशाह' को सम्बोधन करके लिखे गये हैं। आप नीति विषयक कविता में बड़े निपुण थे। इनका रचा हुआ ग्रन्थ तो कोई नहीं मिलता किन्तु भाट लोगों के मुख से वंश परम्परागत कुछ स्फुट छन्द मिलते हैं। जिन में नीति का उपदेश है।

१ जीभि=जिह्वा, जीभ
बाँट=तोल, बट्ट
सँभारे=संभालकर
२ टका='दो पैसे', धन
कुतहूल=अजीब कारन.मे
सुखपाल=पालकी
टकटका=टिकटिकी बांधना
३ गरियार=गड़जाने वाला, अपने स्थान से शीघ्र न उठने वाला, सुस्त, बोदा।
अड़ियल=अड़कर चलने वाला
बांभन=ब्राह्मण
बेनियाव=अन्यायी
४ गाढ़े=घने, घोर
सँकरे=संकट, आपत्ति
५ बुधि=बुद्धि
हौंस=हौसला, घमंड

गिरिधर कविराय।

गिरिधर कविराय का जन्म सम्वत् १७७० (१७१३ ई०) में माना जाता है। भाषा से आप अवध निवासी प्रतीत होते हैं। इनके विषय में और कुछ अधिक विदित नहीं है। इन्होंने बहुत सी कुण्डलियां बनाई हैं जिन में इनका नाम आता है। इसी से इनका एक संग्रह छपा है। कहते हैं कि जिन कुण्डलियों के आदि और अन्त में 'सांई' शब्द आता है वे इन की स्त्री की बनाई हुई हैं। इनके विषय में एक दन्त कथा प्रसिद्ध है जिसके कारण इन्हें एक बढ़ई से लड़ कर राज्य छोड़ना पड़ा। इनकी कविता में नीति का उपदेश है। भाषा सरल पर सरस है।

१ बरु=बरम्, अच्छा

बिगरी=बिगड़ी, अनबन

ससुरारि=सुसराल में

झंखे=झख मारे

२ वनिता=स्त्री

पांवरिया=दरबान

तपै=पकावे

तरह=संधि करना, मेल जोल

३ रूपा=चांदी, सफेद

रोय=रो रो कर

सेजन=शय्या

बहुरि=फिर

ठाऊं=टिकाऊ

तौलत=तोलती है

पाहुन=अतिथि

५ लेखा=हिसाब, तरीका

बेगरज़ी=निःस्वार्थ, बिना खुद-ग़र्जी के

६ अवसर=समय, बुरे दिन

द्वन्द=जोड़े--सरदी गर्मी, ईर्ष्या द्वेष, आदि दुःखों के जोड़े।

बिकाने=बिक गये

यहां पर राजा हरिश्चन्द की कथा का प्रसङ्ग है। कहते हैं कि वे बड़े दानी और सत्यवादी थे। एक बार विश्वामित्र ने

कपट से उनका सारा राज्य दान में ले लिया और फिर दक्षिणा के लिये और धन मांगा। अपनी प्रतिज्ञा-पूर्त्ति के लिये दक्षिणा का धन चुकाने के निमित्त उन्होंने अपने आप को एक डोम के घर बेचा, जिस ने कि उन से श्मशान की रखवाली का काम लिया। कवि का आशय यह है कि दुर्दिन आने पर बड़े बड़ों को भी सब कुछ करना और सहना पड़ता है।

मरघट=श्मशान

(देखो नोट 'बिकाने' पर)

बलधारी=बलवान्

(देखो नोट 'रहीम' दोहा ३३)

तपै=पकावे

देखो नोट 'रहीम दोहा' ३४ पृष्ठ

७ नारा=पानी का नाला

दावागीर=धावा करके आये हुये, घेरे हुए

झारै=दूर हटावे

८ कमरी=कम्बल

बकुचा=गठरी

दमरी=दमड़ी

९ टरत=टलता है

१० परतीती=विश्वास

———

रामचन्द्र शुक्ल ।

आप का जन्म सम्वत् १९४१ (१८८४ ई०) में आश्विन पूर्णिमा के दिन अगोना ग्राम में हुआ । पुरातन प्रथा के अनुसार आप का विवाह १२ वर्ष की आयु में ही हो गया । आप के श्वसुर काशी के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित रामफल जी पाण्डे हैं । आप को बचपन से ही पढ़ने लिखने का बड़ा चाव था । आपने प्रयाग में कानून की शिक्षा भी प्राप्त की । फिर मिशन स्कूल के मास्टर बने । तदुपरान्त 'काशीनागरी प्रचारिणी सभा' में आ गये और उनकी पत्रिका का सम्पादन करने लगे । आज कल आप 'हिन्दू विश्वविद्यालय' काशी के प्रोफैसर पद पर नियुक्त हैं । आप बड़े धुरन्धर विद्वान्, प्रतिभाशाली कवि, गम्भीर समालोचक और सिद्धहस्त लेखक हैं । आप ने 'बुद्ध चरित्र' 'हिन्दी भाषा का इतिहास' 'कविता क्या है' आदि २ एक दर्जन के लगभग पुस्तकें लिखी हैं ।

परिनिर्वाण=मोक्ष, मरनेका समय

संघ=बौद्ध भिक्षुओं की प्रचारक मंडली ।

राजगृह=पटना के समीप के एक शहर का पुराना नाम । यह बुद्धों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है यहां महाराजा अशोक ने बहुत से बुद्ध मन्दिर बनवाये थे । यह मौर्य्यवंशी राजाओं तक राजधानी रहा ।

वैशाली=तिरहुत के एक पुराने शहर का नाम है इसे आजकल बसाढ कहते हैं । यह गङ्गा के बायें तट पर है । यह भी बुद्ध भगवान के प्रचार का केन्द्रस्थल रहा है ।

कौशांबी=यह भी एक पुराने शहर का नाम है जो कि यू.

पी. में ही बताया जाता है, जिसे आजकल कोसम कहते हैं यह प्रयाग के समीप यमुना के तट पर है ।

श्रावस्ती=उत्तर कोशल में गङ्गा के तट पर बसी हुई बहुत प्राचीन नगरी। इसका वर्तमान नाम सहेत महेत है । यह बुद्ध धर्म का केन्द्र रही है और बड़ी श्रीसम्पन्न नगरी थी ।

चातुर्मास्य=बरसात के चार महीने

जेतबन = प्राचीन अयोध्या के अन्तर्गत श्रावस्ती का एक उपवन यहां बौद्धों का एक बड़ा विहार था ।

धराधाम=पृथ्वी लोक, संसार

आभा=कान्ति, चमक

नियरायगयो=निकट आगया आ पहुंचा ।

साखुन=शाखाएं

कुशीनार=यहां बुद्ध भगवान् की मृत्यु हुई थी। यह भी बहुत पुराना शहर था । यह अब कुशिया नाम से प्रसिद्ध है । यू. पी. में है और गोरखपुर से २५ मील की दूरी पर है ।

तथागत=बुद्ध भगवान्का नाम है

परम शून्यमय=निर्वाण, मोक्ष

— — —

फुटकर ।

१ गर=गला

बेसर=नाक का एक गहना (नथ)

रैन=रात्रि, रात

२ गुन=धनुष की रस्सी, चिल्ला

सर=तालाब

३ उरझि=उलझन, विपत्ति

भूलें=भुलाये

भूलें=ग़लतियां

४ गेह=घर

(पेट प्रपंच)

५ कोटवाल=कोतवाल

शिकदार = कोतवाल का अफसर

दिवान = मन्त्री

बिदारत = चीरता है

कुंजरकुं = हाथी को

तिनुं = तीनों

ज़ेर = आधीन

अहारकुं = आहार को, खाने को

आमिष = मांस

खान सुलतान = बादशाह

६ बिछु = बिच्छु

झेरिकुं = ज़हर को, विष को

हलाहल = उग्र विष

———

भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्र ।

बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म सम्वत् १९०७ (१८५० ई०) तथा मृत्यु सन् १८८५ में हुई । आप बंगाल के रहने वाले थे । आप के पिता का नाम बाबू गोपालचन्द्र था । बाबू गोपाल चन्द्र जी स्वयं बड़े कवि और साहित्य सेवी थे । बाबू हरिश्चन्द्र बचपन से ही अपनी कवित्व शक्ति के चिह्न दिखाने लग पड़े थे । ९ ही वर्ष की अवस्था में आप पितृ-विहीन हो गये । फिर यथा कथञ्चित् अंग्रेजी आदि की शिक्षा पाई । इनको हिन्दी से अत्यन्त अनुराग था । इन्होंने हिन्दी का गौरव बढ़ाने के लिये सैकड़ों ग्रन्थ काव्य, नाटक, आख्यायिका, गद्य, पद्य—आदि लिखे हैं । यह पहिले पुरुष थे जिन्हों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा की पदवी तक पहुंचाने का पूर्ण प्रयत्न किया । इनके इस अटल हिन्दी अनुराग और निःस्वार्थ देशहित को देख कर ही समस्त देश के समाचार पत्रों ने उन्हें 'भारतेन्दु' की पदवी दी थी जो कि राजा और प्रजा दोनों में ही मानता पूर्वक पूजी गई । २० वर्ष की आयु में आप आनरेरी मजिस्ट्रेट बना दिये गये । इन्होंने कई मासिक पत्रिकाएं और सभायें स्थापित कीं । अपने घर पर ही एक स्कूल खोला जो आज 'हरिश्चन्द्र हाई स्कूल' के नाम से चल रहा है । आप बड़े प्रेम-सेवक दानी और उदार चरित महानुभाव थे । लाखों रुपये इन्होंने देशहित के लिये व्यय कर दिये । अन्त में ऋणी भी हो गये । आप ज्वर और कास से पीड़ित होने पर भी, और क्षय रोग के पंजे में फंस जाने पर भी अन्त तक पुस्तकें लिखते ही रहे ।

१ रोवहु=रोवो रुदन करो
विधाता=ब्रह्मा
परत=पड़ता है
लखाई=दिखाई
२ वैदिक=वेदों के माननेवाले
जैन='जिन' भगवान् को पूजने वाले, जैनी
जवन=यवन, मुसलमान
३ खारी=ख़्वारी, ख़्वार, दुःख की बात
टिकस=जो सरकार को दिया जाता है, टैक्स
शैव=शिव को मानने वाला हिन्दुओं का एक मत
शाक्त=जो 'शक्ति' की उपासना करते हैं उनका मत। 'शक्ति' महादेव की स्त्री कही जाती है और 'दुर्गा' 'चण्डी' आदि नामों से पुकारी जाती है।
वैष्णव=विष्णु के भक्तों का मत
वरजि=निषेध करके, त्याग कर
निषेद=निषेध
विभिचार=व्याभिचार, कुकर्म
सहन=सहना है उठाता है
४ रुरुआ=मृगविशेष
रव=शब्द, शोर
भयद=भय देनेवाला
सियार=गीदड़
स्वान=कुत्ता
भूंकि = भौंककर
डरपावई=डराता है
दादुर=मेंडक
तुमुल=घोर, घना
झींगुर = एक प्रकार का जीव, टिड्डा

श्रीधर पाठक ।

आपका जन्म सम्वत् १९१६ (१८६० ई०) में आगरा ज़िले के जोंधरी गांव में हुआ । दुर्भाग्य से पिछले १३ सितम्बर १९२८ को आपका देहान्त हो गया है। आप के पिता और ताया दोनों ही संस्कृत के महापण्डित थे । इन के पिता का नाम पं० लीलाधर था । आप फारसी, और अंग्रेजी में भी सुनिपुण थे । प्रकृति के सौन्दर्य का प्रेम आप में विशेष रूप से विद्यमान् था । आप ने हिन्दी साहित्य की बहुत सेवा की है। आप 'खड़ी बोली' के आचार्य माने जाते हैं। ब्रजभाषा में भी आप कविता करते थे । इन्हों ने कई मौलिक पुस्तकें लिखी हैं और गोल्डस्मिथ के तीन ग्रन्थों का हिन्दी पद्यानुवाद भी किया है, जहां अंग्रेजी की एक लाइन का अनुवाद हिन्दी की एक लाइन में है। आपकी साहित्यिक योग्यता को देखकर लखनऊ में होने वाले 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के पञ्चम अधिवेशन का आप को सभापति बनाया गया था । आप साहित्य परिशीलन में ही लगे रहते थे ।

वनशोभा

चारु=सुन्दर

आंचल=गोदी

सालविसालन=शाल, वृक्ष

मृदु=कोमल

लता=बेल

द्रुम=वृक्ष

विहंगन=पक्षी

रावरौ=शब्द करता हुआ

अलि=भ्रमर

अभग्न=न टूटने वाला, अक्षय

विभ्रम=वास्तविक रूप

सात्विक=सतोगुणमय

क्रम=तरीका, नियम

अनूपम=उपमारहित

श्रीअयोध्यासिंह उपाध्याय ।

आप का जन्म सम्वत् १९२२ (१८६५ ई०) में हुआ । आप के पिता का नाम पण्डित भोलासिंह उपाध्याय था । आज कल आप 'हिन्दू विश्वविद्यालय' काशी में हैं । आप हिन्दी, बंगला, उर्दू, फारसी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं । आप को हिन्दी कविता का अनुराग बाबा सुमेरसिंह जी की सङ्गति से प्राप्त हुआ है । आप को हिन्दी कवियों में बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त है । साहित्य में आप प्रमाण-कोटि तक पहुंच चुके हैं । इन्होंने कई महाकाव्य लिखे हैं । 'प्रिय प्रवास' इनकी प्रतिभा का उज्ज्वल प्रमाण है । यह कई सभाओं के सभापति रह चुके हैं । आप की पुस्तकें कई उच्च परीक्षाओं के कोर्स में हैं । आप का 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' सिविलसर्विस परीक्षा के कोर्स में भी रह चुका है । 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' नामक आप के दो और पद्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं ।

कर्मवीर=जो काम करने में वीर हैं

१ विघ्न=रुकावटें

बाधा=तकलीफ

भीड़=कड़ी विपत्ति

२ जी=चित्त, अपना दिल

तकते=देखते

३ आजकल...=आज आज, कल कल करके जो वृथा समय नहीं खोते

४ गगन=आसमान

दुर्गम=जहां कठिनता से जाना हो सके, 'दुशवार गुज़र'

शिखर=चोटियां

तम=अन्धकार

जलराशि=समुद्र

भयदायिनी=भय देनेवाली, डरावनी

लवर=ज्वाला, आग की लपटें, शोले

नाकाम=निकम्मे बेकार

५ लोहेका चना=अत्यन्त कठिन काम
ठना=निश्चय
गांठ=पेचीदा और मुशकिल बातें

६ ठीकरी=मट्टी के घड़े का टुकड़ा कंकर पत्थर
रेग=रेगिस्तान, मरुभूमि
बबूल=कीकर का वृत्त
चंपा=चमेली
कोकिल-काकली=कोयल जैसी मधुर आवाज़
ऊसर=ऊपर भूमि, बंजर, जहां कुछ नहीं उग सकता
उकठे=सूखे हुए, कटे हुए

७ गगन के फूल=आसमान के फूल, अर्थात् वृथा शेखचिल्ली जैसी बातें, 'सबज़ बाग़' 'हवाई किले'
कारबन=इस नाम की गैस जो कि कोयले में होती है। हीरे में भी वही होती है।

८ मरुभूमि=रेगिस्तान, जहां रेत ही रेत हो और पानी न हो
अगम=जहां कोई जा नहीं सकता
जलनिधिगर्भ=समुद्र के पेट में, सागर के बीच में
बेड़ा=किशती, जहाज़
नभ=आकाश
तार-टेलीग्राफ़

९ कार्यथल=काम करने की जगह
असम्भव = नामुमकिन
अड़चनें=रुकावटें

१० जलधि=समुद्र
क्षुद्र=छोटा सा
व्योम = आकाश

११ विभव=सम्पत्ति, ऐश्वर्य

एक तिनका

१ मुंडेर = बनेरा, मकान की छत का अगला हिस्सा
२ ऐंठ = अकड़, घमण्ड
३ ताने = उपालम्भ

फूल और कांटा

३ भौंर = भ्रमर, भौंरा
श्याम तन = काला शरीर
४ सुरसीस = देवताओं के सिर

एक बूंद

१ कढ़ी = दु:खी हुई
२ बदा = नियत, भाग्य में लिखा हुआ
४ लौं = की तरह, के समान

सैयद अमीरअली 'मीर'।

आप आज कल के सर्व प्रधान मुसलमान हिन्दी कवि हैं। आप का जन्म मध्यप्रदेश में सम्वत् १९३० (१८७३ ई०) में हुआ। आज कल आप उदयपुर राज्य में पुलिस विभाग के सर्वोच्च अधिकार पर नियुक्त हैं। मुसलमान होते हुए भी आप को हिन्दी के साथ विशेष अनुराग है, तुलसीरामायण के साथ विशेष प्रेम है और हिन्दू शास्त्र और पुराणों की विशेष जानकारी है। आप के लेख 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' में भी बड़ी प्रशंसा पाते हैं। कई सभाओं ने आप को ' साहित्यरत्न ' ' काव्य रसाल ' आदि उपाधियां देकर आप का मान बढ़ाया है। आप ने हिन्दी गद्य पद्य में कई पुस्तकें लिखी हैं। आप का धर्म भाव उदार और व्यापक है, संकुचित नहीं।

दशहरा

१ विमल = शुद्ध, निर्मल

२ ललाम = शिरोमणि मुखिया

३ मग = मार्ग

६ संजीवनी = एक बूटी जो कि पुनः नया जीवन देती है, और जिस को हनुमान् लक्ष्मण के मूर्छित होने पर लाया था।

६ यान = चढ़ाई

प्रवर्तक = चलाने वाला

१० विजय = जीत

११ अत्र = यहां

१२ स्वार्थपशुबलि = खुदग़र्ज़ी रूपी पशु की बली (कुर्बानी)

१४ कुविचार रावण = बुरे विचार रूपी रावण

१५ सद्बुद्धि-सीता = नेक अकल रूपी सीता

१६ अवध = अवध देश जो कि राम की जन्मभूमि था

श्रीगौरीदत्त वाजपेयी ।

आप हिन्दी के अच्छे कवि हैं । आप की कविता में सरलता है । आप ने स्काट की एक कविता 'Love of country' का सरल हिन्दी में अनुवाद किया है जो यहां पर संग्रहीत है ।

स्वदेश प्रीति

१ दुरात्मा = खोटी आत्मा वाला

जननी = माता

२ सत्कार = इज्ज़त, मान

३ लक्ष्मी का भण्डार = धन दौलत का ख़ज़ाना

मतवार=मतवाला, घमण्डी, पागल

४ कीर्ति = यश

अधिकारी = हक़दार

———

श्री जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ।

आप का जन्म सम्वत् १९३२ (१८७५ ई०) में नदिया जिले के छिटका नामक गांव में हुआ । आप माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं । आप के पिता पण्डित कालीप्रसाद इनको २ वर्ष की आयु में ही पितृ विहीन करके स्वर्ग सिधार गये । इनका पालन पोषण इनके मामा ने ही किया । आप एफ. ए. तक अंग्रेजी पढ़े हैं । इन को बचपन से ही हिन्दी कविता का शौक था । स्कूल में भी कविता के लिये यह इनाम हासिल किया करते थे । आप के लेख ' भारतमित्र ' आदि पत्रों में प्रायः छपा करते हैं । आप ने हिन्दी भाषा की बड़ी सेवा की है । लाहौर में होने वाले ' हिन्दी साहित्य सम्मेलन ' के द्वादश अधिवेशन में आप को सभापति चुना गया था । आप की कविता बड़ी रसीली, व्यंगमय, और हास्यपूर्ण होती है । आप ने कई पुस्तकें लिखी हैं ।

(१) भाषन=भाषाएं बोलियां

चन्द = चान्द कवि जो हिन्दी का सर्वप्रथम कवि गिना जाता है और 'पृथ्वीराजरासो' का कर्त्ता है ।समय लगभग १२०० A. D.

सूर = सूरदास कवि जो श्री कृष्ण के परम भक्त और 'सूरसागर' के रचयिता हैं । समय लगभग १६०० A. D.

तुलसी = तुलसीदास 'रामचरित मानस ' नामक रामायण के कर्त्ता, और हिन्दी के परम प्रसिद्ध महाकवि । समय १६०० A. D.

लासानी = अद्वितीय

या को = इस को

भरे अंगरेजिहु पानी = जिस के आगे अंग्रेजी भाषा भी पानी भरती है, अर्थात् मिठास और सुन्दरता में अंग्रेजी भी हिन्दी से हेच है ।

(२) राष्ट्र संदेश

३ कूकर = कुत्ता

४ धरनी = पृथ्वी

(३) राष्ट्र संदेश

अनुराग = प्रेम

सूकर = सूअर

मनुज = मनुष्य

भेष = पहिरावा, शकल

श्रीरामचरित उपाध्याय।

आपका जन्म सम्वत् १९२९ (१८७२ ई०) में गाजीपुर में हुआ। आप के पिता और भ्राता बड़े विद्वान् थे। आप ने भी संस्कृत की अच्छी शिक्षा पाई है। काशी के महामहोपाध्याय पं० शिव कुमार शास्त्री जी से भी आप संस्कृत पढ़ते रहे हैं। गणित-ज्योतिष का आप को अच्छा ज्ञान है। आज कल आप जिमींदारी के काम में संलग्न हैं। आप ने हिन्दी साहित्य की अच्छी सेवा की है। पहिले ये पुराने ढंग की कविता किया करते थे। पर अब खड़ी बोली में भी करने लगे हैं। आप ने बहुत पुस्तकें लिखी हैं और अभी और लिख रहे हैं।

(१) कुसंग

१ खल = दुष्ट

अनल = अग्नि

२ आँटा = उबाला

४ अमल = खटाई

(२) कपूत

१ आलस-रत=आलसी (आलस्य से भरा हुआ)

शोकातुर = शोक से ग्रस्त

निद्रातुर बहुत सोनेवाला, सोतड़

चतुरानन=चार मुखों वाला, ब्रह्मा

निस्सन्तान=औलाद से शून्य

२ काला अक्षर भैंस बराबर=अर्थात् जो कि पढ़ना लिखना कुछ नहीं जानता।

क्रोधानल=क्रोध (गुस्सा) की अग्नि

मिश्रबन्धु ।

पण्डित गणेशविहारी मिश्र, पं० श्यामविहारी मिश्र, और पं० शुकदेवविहारी मिश्र यह तीनों सहोदर भाई हिन्दी संसार में 'मिश्र बन्धु' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप जो कुछ भी लिखते हैं वह तीनों मिलकर लिखते हैं, अतः प्रत्येक कविता तीनों की ओर से मानी जाती है। आप के पिता पण्डित बालदत्तमिश्र प्रसिद्ध महाजन, जिमींदार और अच्छे कवि थे। पिता के मरने पर पं० गणेशविहारी मिश्र तो गृहस्थी का संचालन करते हुए अपने पुराने व्यवसाय में ही संलग्न हैं। पं० श्यामविहारीमिश्र एम. ए. तक शिक्षा पाकर आजकल कोआपरेटिव सोसाइटीज़ के डिप्टी रजिस्टरार हैं। और राय बहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र भी B. A., LL. B. की परीक्षा पास करके छत्रपुर राज्य के दीवान हैं। आप की पुस्तकें बड़ी छानबीन और अन्वेषण के बाद लिखी हुई होती हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं जिन में 'मिश्रबन्धु विनोद' और 'हिन्दी नवरत्न' यह बहुत प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मचर्य

१ जोति = ज्योति, चमक

सकति = शक्ति, ताकत

३ मत्र = जादू, इत्यादि

४ सरिस = सदृश, समान

५ सत = शत, सौ

बरता = चुनता, विवाह करता

७ बालव्याह=छोटी उमर का विवाह

७ मनसिज=कामदेव

— — —

श्री गयाप्रसाद शुक्ल।

आप का जन्म सम्वत् १९४० (१८८३ ई०) में हुआ। 'स्नेही' और 'त्रिशूल' आप के ही उपनाम हैं, जिनमें आप समाचार पत्रों में कवितायें छपवाया करते हैं। आप विद्यार्थी काल में ही हिन्दी और उर्दू की बड़ी अच्छी कविता किया करते थे और गांव में जो भी जलसा, सभा या उत्सव आदि होता था तो उस समय आप ही स्कूल से आकर उत्तमोत्तम कविता सुनाया करते थे। बाद में आप स्कूल मास्टर बने और फिर अफसरों की कृपा से जो इन पर इनकी कवित्व शक्ति के कारण प्रसन्न थे आप हेडमास्टर बन गये। फिर असहयोग के दिनों में आप सरकारी नौकरी छोड़कर साहित्य सेवा में लग गये। और आज तक साहित्य की ही सेवा कर रहे हैं। आप ने पुस्तकें बहुत कम लिखी हैं, पर अखबारों में आप की कविताओं की बड़ी प्रतिष्ठा और चर्चा है। अखबारी दुनियां में आप सर्वोत्तम कवि समझे जाते हैं।

लड़कपन

१ चोचले = चंचल, बचपन की बातें

३ प्रभा = कान्ति, चमक

कण = टुकड़े, जर्रे, परमाणु

४ सखा = मित्र

प्रौढ – अत्यधिक बढा हुआ

६ सहपाठी = साथ पढनेवाले, एक श्रेणी के साथी

बीहड़ - विषम ऊंचा नीचा, खाबड़

८ धाम - स्थान, घर

श्री रूपनारायण पाण्डेय ।

आप का जन्म सम्वत् १९४१ (१८८४ ई०) में हुआ। आप उन थोड़े पुरुषों में से हैं जो स्कूल की शिक्षा पाये विना ही अपने परिश्रम से विद्या प्राप्त करते हैं। बचपन में ही पिता और पितामह के स्वर्गवास हो जाने के कारण आप की शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था तो भी इन्होंने अपने यत्न से हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। आप ने २०० के लगभग गद्य लेख, एक दर्जन के लगभग अखबारों का सम्पादन और १०० के लगभग पद्य काव्य लिखे हैं। हिन्दी की उच्च कोटि की मासिक पत्रिका 'माधुरी' का सम्पादन भी करते रहे हैं। इन का सारा जीवन साहित्य सेवा में व्यतीत हुआ है।

दलित कुसुम

दलित कुसुम=टूटा हुआ नीचे गिरा हुआ फूल

१ अधम=नीच

पर-दुःख-सुख=दूसरे का दुःख और सुख

कुसुम=फूल

२ निठुर=दयाशून्य बेरहम

नवलतिका=नई बेल

४ सहृदय=प्रेमी रसिक मनवाला

मुदित=प्रसन्न

मधुकरी=भ्रमरी शहद की मक्खी

नियति=हे भाग्य (किसमत)

आश्वासन

१ अवनति=नीचे जाना, तनज़्ज़ल

रवि=सूर्य

२ जल=१ पानी २ जलना

घाम=गरमी

मही=पृथ्वी

सहोदर=सगा भाई

३ क्षीण=कमजोर, दुर्बल

श्री=शोभा

अभ्युदय=उन्नति, ऊपर उठना

परिवर्तन=तबदीली

४ राशि=ढेर, समूह, पुञ्ज

दिवाकर=सूर्य

कर=१ हाथ, २ किरणें

५ नवपल्लव=नये पत्ते

उन्नतियुत=उन्नति से युक्त, तरक्की करने वाले

श्रीमैथिलीशरण गुप्त ।

आप का जन्म सम्वत् १९४३ (१८८६ ई०) में झांसी में हुआ है । आप के पिता श्री रामचरण सेठ भी बड़े रसिक और कवि थे । आप पांच भाई हैं । अभी तक गुप्त जी निःसन्तान हैं । इनके छोटे भाई सियाराम शरण गुप्त भी अच्छी रचना करते हैं । 'मौर्य विजय' काव्य इन्हीं का लिखा हुआ है । वर्तमान हिन्दी संसार में गुप्त जी का पद बहुत ऊंचा है । वे कवि-शिरोमणि समझे जाते हैं । आप की एक पुस्तक 'भारत भारती' बहुत ही सर्व प्रिय हुई है । आप की कविता सरल, और भाषा शुद्ध और व्याकरण सम्मत होती है । उच्च कक्षा के विद्यार्थियों और हिन्दी प्रेमियों में आपका बहुत मान है । आप की कविताएं पत्रों में भी प्रायः छपती हैं । दो दर्जन के लगभग पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हो चुकी हैं । इनकी पुस्तकों ने हिन्दी का मस्तक ऊँचा कर दिया है, और जनसाधारण में हिन्दी का अनुराग उत्पन्न किया है ।

शकुन्तला की विदा ।

यह कालिदास के नाटक से अनूदित है । जब शकुन्तला को कण्व ऋषि राजा दुष्यन्त के पास हस्तिनापुर भेजने लगे तो उस समय की यह अन्तिम विदा और आशीर्वाद है ।

१ त्यागी = त्यागशील, संसार को छोड़ने वाले, जिन्हें संसार से मोह नहीं होता ।

कण्व = यह बड़े ऋषि थे और उस आश्रम के कुलपति थे जहां पर शकुन्तला ने लड़कपन में पुष्टि पाई थी। इन्होंने ही विश्वामित्र से छोड़ी हुई शकुन्तला को पिता की भांति पाला पोसा था ।

करुणा = दया

सुता = लड़की, कन्या

धरोहर = इमानत

होमशिखा = हवन की अग्नि

स्वस्तिगिरा = कल्याण करने वाली वाणि, आशीर्वाद

२ ययाति···शर्मिष्ठा = महाभारत में दैत्यों के गुरू शुक्राचार्य की कन्या की एक सहेली शर्मिष्ठा थी। उस ने ययाति ऋषि के साथ स्वयम्वर विवाह करलिया था। माता पिता ने इस की अनुमति देदी थी और फिर उनसे राजा पुरु का जन्म हुआ था। इसी प्रकार शकुन्तला ने भी दुष्यन्त से स्वयं विवाह कर लिया था और माता पिता ने अनुमति देदी थी। अत: उन के यहां से भी ऐसा ही प्रताप शाली पुत्र जन्म ले यह आशीर्वाद का अभिप्राय है।

सार्वभौम = सारी भूमि पर राज्य करने वाला, चक्रवर्त्ती राजा

औरस=पुत्र अपने पेट से जन्मा हुआ, और अपनी छाती के दूध से पाला हुआ पुत्र।

३ शुश्रूषा=सेवा

सौत=सपत्नी, सौंकण

मान=घमण्ड, गर्व

रति=प्रेम

४ परिजन=नौकर, चाकर

वंशव्याधियां=कुल के रोग अर्थात् कुल को कलङ्क लगाने वालीं।

भारतवर्ष की श्रेष्ठता

१ भूगोल=पृथ्वी का गोला, सारा संसार

लीलास्थल=खेलने की जगह, विलासभूमि

गिरि=पहाड़

उत्कर्ष=उन्नति, बढ़ती

२ सिरमौर=सिरताज

पुरातन=पुराना

विश्व=संसार

भवभूतियां=संसार रचने की शक्तियां

भण्डार=खज़ाना

नरसृष्टि=मनुष्यों की सृष्टि

३ अधोगति=अवनति, गिरावट

चिन्ह=निशान, लक्षण

४ ध्रुवधीर=ध्रुव के समान स्थिर निश्चल

५ आदर्शजन=नमूने के मनुष्य

६ तातहित=पिता की भलाई के लिये, बाप की ख़ातिर

प्रौढ़तम=अत्यधिक

पालक=पालने वाले

७ इन्द्रियदमन=इन्द्रियों को काबू में करना

धरा=पृथ्वी

विशाल=बड़ी

मौर्यविजय

यह कहानी उस समय की घटना की है जब सिकन्दर आज़म सारे देशों को जीत कर के भारतवर्ष पर चढ़ाई करने आया था। उस समय महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य ने ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी में उस को पंजाब से परे २ ही पराजय करके वापिस भेज दिया था। कहते हैं कि इस हार का सिकन्दर पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि लौटते हुए बेचारा घर पहुंचने से पहिले ही मरगया।

१ अभय=निर्भय

२ प्रकम्पित=कंपा देना

सुरपति=इन्द्र

३ सदय=दयालु, रहमदिल

४ अवनि=पृथ्वी

— — —

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान।

आप का जन्म सम्वत् १९६१ (१९०४ ई०) में प्रयाग में हुआ। आप के पतिदेव खण्डवा निवासी श्री ठाकुर लक्ष्मण सिंह जी बी. ए., एल. एल. बी. हैं। स्त्री-कवियों में आप का स्थान सबसे ऊंचा माना जाता है। आप की कविताएं बड़ी सरस, सरल और भाव पूर्ण होती हैं। मनोभावों का चित्रण इनमें विशेष रूप से सराहनीय है।

ठुकरा दो या प्यार करो

१ उपासक=उपासना — पूजा करने वाले

२ मुक्तामणि=मोती और हीरे रत्न आदि

३ साहस=हौसला

४ नैवेद्य=ठाकुर जी पर चढ़ाने के लिये खाद्य पदार्थ, प्रसाद

झांकी=मूर्त्ति

५ माधुरी=मिठास

चातुरी=अकल

७ पुजापा=पूजा के द्रव्य

८ उन्मत्त=पागल

९ अर्पण=समर्पण, भेंट,

चलते समय

२ कृपाकटाक्ष=दया से भरी हुई आंखें

बलिहोकर=न्योछावर होकर

३ मानबाण=अभिमान का तीर

———

श्रीलक्ष्मीधर वाजपेयी ।

आप का जन्म सम्वत् १९४४ (१८८७ ई०) में कानपुर जिले में हुआ । जब यह चार ही वर्ष के थे, तभी से इनके पिता ने इन्हें नीति और धर्म के बहुत से श्लोक कण्ठस्थ करा दिये थे जिनका प्रभाव यह हुआ कि साहित्य और कविता की ओर बचपन से ही इनका प्रेम और रुचि बढ़ती गई । बाद में छोटी उमर की शादी के कारण आप अधिक स्कूल-शिक्षा प्राप्त न कर सके । अपने निजी तौर पर अखबार आदि पढ़ने से आप की हिन्दी में अच्छी महारत हो गई । फिर प्रसिद्ध देशभक्त पं० माधवराव सप्रे से इनका परिचय होने से इनको साहित्य सेवा का अच्छा अवसर मिल गया । आप कई पत्रों को लेख भेजते रहे, और 'हिन्दी केसरी' 'आर्यमित्र' और 'चित्रमय जगत्' आदि कई अखबारों के सम्पादक भी रहे । आप ने कालिदास के 'मेघदूत' का समवृत्त और समश्लोकी हिन्दी अनुवाद किया है । अब आप प्रयाग में स्वतन्त्र रूप से 'तरुण भारत ग्रन्थावली' निकाल कर साहित्य की सेवा कर रहे हैं । आप २५ से ऊपर पुस्तकें लिख चुके हैं ।

ग्रीष्म का अन्तिम गुलाब

१ कलिका=फूल की कली
विकसी=खिली हुई
छवि=कान्ति, चमक

२ क्यारी=फूलों का खेत

३ विधि-विपाक=परमात्मा द्वारा कर्मों के फल देने की लीला

———

श्री जयशंकर 'प्रसाद'।

बाबू जयशंकर प्रसाद जी का जन्म सम्वत् १९४६ (१८८९ ई०) में काशी में हुआ। आप जाति के वैश्य हैं। इनके पिता बाबू देवी प्रसाद जी बड़े रईस, वाणिज्य कुशल और बड़ी ज़मीन और कारखानों के मालिक थे। बचपन में ही पितृ-वियोग के कारण इनकी अधिकतर शिक्षा घर पर ही मास्टर रख कर हुई है। आप उरदू, फारसी और अंग्रेजी के भी वेत्ता हैं। सोलह वर्ष की अवस्था में बड़े भाई का भी देहान्त होने से सारी जिमींदारी और व्यापार का भार आप पर आ पड़ा। आप ने उसे खूब दक्षता से निभाया है। बचपन से ही आप चटपटी तुकबन्दियां करने के बहुत शौकीन थे। अब तो आप कवियों में आदरणीय हैं। आप की कविता में मौलिकता और भाव प्रकृष्टता की सभी सराहना करते हैं। आप अतुकी कविता (Blank verse) में विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। आप ने डेढ़ दर्जन के लगभग पुस्तकें लिखी हैं।

(१) प्रायः=अकसर, आम तौर पर
भीमा = डरावनी
रजनी = रात
अनिष्ट = बुराइयां, पाप
संकीर्णता = हृदय का छोटापन
निरख = देखकर
भव = संसार
चिरविछोहियों = बड़ी देर से बिछुड़े हुए
कुहुक = ओस

(२) पथिक प्रेम = प्रेम का मुसाफिर
स्वार्थ = खुदग़र्ज़ी
स्वर्गविहारी = स्वर्ग-सुख में विचरने वाले
भ्रान्त = भटकते हुए

———

श्रीपुरोहित लक्ष्मीनारायण।

आप आजकल के अखबारी कवियों में विशेष ख्याति रखते हैं। आपकी भाषा बड़ी सरल और मंजी हुई होती है। आप ने अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि लौंगफैलो की 'साम आफ लाइफ' नामी कविता का हिन्दी में उलथा किया है, जो यहां पर दिया गया है।

जीवनगीत

१ मृतवत् = मरे हुए के समान

२ अवसान = अन्त

जीवनिदान = जीव के कारण, आत्मा के विषय में

४ अमित = अनगिनत, असंख्य

तद्यपि = तथापि, तो भी

प्रयान = प्रस्थान

७ सज्जनचरित = सज्जन महात्माओं के जीवन चरित्र

———

श्रीमती कुमारी कमला।

आप की कविताएं भी अखबारों में छपा करती हैं। स्त्री-कवियों में आप विशेष नाम रखती हैं। आप की कविता में भाव-गाम्भीर्य के साथ २ करुणा रस विशेष रूप से झलकता है। आप की भाषा बड़ी परिष्कृत होती है।

साध

१ साध = साधना, आशा

अन्तर्धान = छुपना, परदे के अन्दर होना

२ विषमय = ज़हरीला

मादकता = नशा

अनन्त = न समाप्त होनेवाला, (मरा हुआ)

३ अशेष = बाकी न रहने वाली

———

श्रीगयाप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य 'श्रीहरि'।

अख़बारी दुनिया में आप की कविताएं विशेष आदरणीय हैं। आप आज कल के रहस्यवादी कवि हैं। आप की शैली बड़ी रोचक और प्रभावमयी है। भाषा सरल और शुद्ध होती है।

कामना

१ प्रेमकुटी=प्रेम की झोंपड़ी

२ प्रेमासव=प्रेम की शराब

एक वृत्ति=एक ओर ध्यान

———

श्रीकन्हैयालाल मिश्र ।

आप प्रकृति निरीक्षण और सौन्दर्य वर्णन में बड़े निपुण हैं। आप की कविताएं भी समाचार पत्रों में सुशोभित होती हैं। आप की कविता में 'शिक्षा' और 'व्यंग्य' दोनों रहते हैं।

बिखरा फूल

धूसरित=भूरे से रंग का

पादाहत=पाओं से ठुकराया हुआ

२ म्लान=मलीन, मुरझाया हुआ

४ सूत्रधार=अध्यक्ष, सूत खेंचनेवाला

धीमान्=अकलमन्द

५ व्यंग प्रहार = व्यंगों की चोटें, उलाहनों के घाव

श्री जैनेन्द्रकिशोर ।

मेरी मय्या

१ सुमधुर=मीठा

२ व्यथित=दुखी, पीडित

५ विलगाना=पृथक् करना

३ पलना=झूला

४ विलोक=देखकर

६ टेक=सहारा

———